लोकतंत्र की अवधारणा एवं विकास प्रक्रिया

लोकतंत्र क्या है?

सारी जिंदगी हम भिन्न–भिन्न समूहों तथा संगठनों के घटक बने रहते हैं परिवार, पड़ोस, क्लब तथा रोजगार की ईकाईयों से लेकर राष्ट्रों तथा राज्यों तक। इन सभी संगठनों में, चाहे वह छोटे हों चाहे बड़े, समूचे संगठन के बारे में निर्णय करने हेतु कि क्या उद्देश्य सामने रखा जाए, नियमावली क्या हो उसके घटकों तथा लाभों का बँटवारा कैसे हो। इन सबको सामूहिक निर्णय कहा जाता है, जबकि वे निर्णय जो लोग अकेले तौर पर लेते हैं, व्यक्तिगत निर्णय कहलाते हैं। लोकतंत्र सामूहिक निर्णय निर्धारण की एक पद्धति है। यह इस आदर्श को लेकर चलता है। जिन निर्णयों से सारा समूह या संगठन प्रभावित होता हो, वे उस संगठन के सभी घटकों की सहमति से होने चाहिए और सभी घटकों को निर्णय लेने में शामिल होने का बराबर अधिकार होना चाहिए। दूसरे शब्दों में कहा जाएगा कि लोकतंत्र के दो मूल सिद्धान्त हैं। एक तो सामूहिक निर्णयों पर सार्वजनिक नियंत्रण और दूसरे, वह नियंत्रण लागू करने में अधिकारों की समानता। जिस हद तक ये दोनों सिद्धान्त किसी संगठन की निर्णय–निर्धारण पद्धति में विद्यमान हो, उस हद तक उसे लोकतांत्रिक कहा जा सकता है।[1]

समाज और राज्य में लोकतंत्र

लोकतंत्र इस परिभाषा में दों बातें शुरू में ही स्पष्ट हो जाती है। पहली बात तो यह कि लोकतंत्र का संबंध केवल राज्य या शासन से नहीं है। जैसा कि लोग प्रायः समझते हैं। लोकतंत्र के सिद्धान्त हर प्रकार के समूह के सामूहिक निर्णय की पद्धति पर लागू होते हैं। वास्तव में, राज्य के स्तर पर लोकतंत्र तथा समाज के अन्य संगठनों में लोकतंत्र के बीच बड़ा महत्वपूर्ण संबंध है। परन्तु राज्य के स्तर पर लोकतंत्र का मौलिक महत्व है क्योंकि राज्य में सभी संगठन समाहित है, राज्य को सारे समाज के जीवन में नियमबद्ध करने का, अनिवार्य कर–वसूली का और राज्य के घटकों की जीवन मृत्यु तक पर पूरा अधिकार है। इसलिए हमारी चर्चा प्रायः लोकतांत्रिक शासन के विषय में केन्द्रित रहेगी।

[1] http://wikipedia.org/democracy2001 accessed on march 2014

एक सापेक्ष अवधारणा

उपर्युक्त परिभाषा के बारे में समझने की दूसरी बात यह है कि लोकतंत्र में ऐसा नहीं होता कि या तो सब कुछ है या कुछ भी नहीं। अर्थात् किसी संगठन या समूह में लोकतंत्र के सभी अंग–प्रत्यंग होना जरूरी नहीं। मात्रा कम या ज्यादा रहती है कहीं सार्वजनिक निर्णय–निर्धारण में समान भागीदरी के आदर्श से समीपता एक जैसी नहीं होगी। प्रचलित परिपाटी यह रही है कि हम उस शासन को लोकतांत्रिक मानते हैं। जिसमें शासन के सार्वजनिक पदों के लिए चुनावी मुकाबला होता है। जिसमें सभी व्यस्क नागरिकों को चुनाव लड़ने और मतदान का समान अधिकार रहता है और जहां नागरिक एवं राजनीतिक अधिकारों के लिए वैधानिक सुरक्षा उपलब्ध होती है। **परन्तु कोई राज्य ऐसा नहीं जहां सार्वजनिक नियन्त्रण और राजनीतिक मानव चेतना स्वतंत्र होकर जीना चाहती है। और गुलामियों से मुक्त होने के लिए निरंतर संघर्ष कर रही है। उसका संघर्ष ही मानव जाति का इतिहास है। मनुष्य, मनुष्य का गुलाम रहा, प्रकृति का गुलाम रहा, देवताओं का गुलाम रहा, रीति रिवाजों का गुलाम रहा, पूर्वग्रहों एवं कुसंस्कारों का गुलाम रहा, अंधविश्वासों का गुलाम रहा, अज्ञान और मोह का गुलाम रहा, लोकतंत्र उस व्यवस्था का नाम है। जो मनुष्य इन सब दासताओं से मुक्त कराना चाहती हैं। दूसरे शब्दों में यूं कहा जा सकता है कि मानवता का इतिहास ही लोकतंत्र का इतिहास है।**[2]

धर्म समाज, राजनीति, अर्थव्यवस्था आदि सभी क्षेत्रों में अपने समस्याओं का समाधान करने के लिए मनुष्य ने विविध परंपराओं को जन्म दिया किन्तु वे ही उस पर हावी हो गई, व्यक्तित्व को दबाने लगी, विकास रूक गया। इस अनुचित दमन के विरूद्ध मानव ने जो संघर्ष किया उसी के परिणामस्वरुप लोकतंत्र का जन्म हुआ इसी संघर्ष को विभिन्न कालों एवं विभिन्न देशों में अलग–अलग अग्रणीय नायकों के रूप में क्रमवार देखने को मिलेगी।

लोकतन्त्र शब्द **''डेमोक्रेसी''** का हिन्दी पर्याय है। डेमोक्रेसी शब्द मूल यूनानी भाषा से लिया गया है। डेमॉस–जनता, केशिया–शासन, जिसका शाब्दिक अर्थ है–''जनता का शासन'' अमेरिका राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन ने तो लोकतंत्र को परिभाषित करते हुए कहा भी है कि–''जनता की, जनता द्वारा, जनता के लिए सरकार'' शुरू–शुरू में लोकतंत्र शब्द का प्रयोग प्राचीन यूनान में–**''अनेक लोगों के शासन''** क रूप में लिया गया था, न

[2] **शास्त्री इन्द्रचन्द्र (2013): लोकतंत्र का लक्ष्य,**

कि आज जैसे सकारात्मक रूप में। इस प्रकार सत्ता की शक्ति किसी एक व्यक्ति के हाथों में न रहकर कई व्यक्तियों में समाहित होती थी। अरस्तू ने 6 प्रकार की शासन पद्धति का वर्णन किया था। राजतंत्र, निरंकुशतंत्र, कुलीनतंत्र, वर्गतंत्र, लोकतंत्र और भीड़तंत्र यहाँ जान लेना जरूरी है कि लोकतंत्र के लिए जबकि डेमोक्रेसी को लोकतंत्र का पर्याय माना जाता है।

शुरू–शुरू में डेमोक्रेसी (भीड़तंत्र) का न तो आदर्श शासन पद्धति माना जाता था और न ही इसे नकारात्मक रूप से लिया जाता था, लेकिन 17वीं शताब्दी के लेवलर्स आन्दोलन (इंब्लैण्ड) के बाद लोकतंत्र का अर्थ, वांछित और सकारात्मक रूप से लिया जाने लगा। वैसे लोकतंत्र भी अन्य शासन पद्धतियों की तरह एक शासन पद्धति है, लेकिन आज के युग में इसे शासन पद्धति से कुछ अधिक माना जात है, इससे लोगों की उपेक्षायें कुछ अधिक है। वास्तव में आज यह जीवन पद्धति, एक सामाजिक व्यवस्था, एक सांस्कृतिक प्रतिमान, राजनैतिक व्यवस्थाा का एक स्वरुप और राज्य का एक प्रकार है।

लोकतंत्र की विस्तृत अवधारणा

आधुनिक युग का आरम्भ पुर्नजागरण तथा धर्म–सुधार के शक्तिशाली आन्दोलनों से हुआ। राजनीतिक तथा सामाजिक जीवन का आधार व्यक्ति को बनाया गया इसके साथ ही नए नैतिक मूल्यों, प्राकृतिक अधिकारों, स्वतंत्रता के विचार तथा अन्य लोकतांत्रिक विचारों का जोर शोर से समर्थन हुआ। पुर्नजागरण के दौर में इटली में नगर–राज्य व्यवस्था पनपी जिसकी कार्यक्रिया प्राचीन यूनानी नगर राज्यों से मिलती–जुलती थी। फ्लोरेंस तथा वेनिस में लोकतंत्रीय व्यवस्थायें स्थापित हुई। यूरोप के दूसरे देशों में शक्तिशाली राजाओं के आधीन प्रभुत्व सम्पन्न राष्ट्रीय राजाओं की स्थापना हुई। एक नए वर्ग–मध्यम वर्ग का उदय हो रहा था, और सामंती व्यवस्था का पतन हो रहा था जिसका स्थान राष्ट्रीय व्यवस्था ले रही थी। 16वीं और 17वीं शताब्दी इस परिवर्तन का समय था। इटली के नगर–राज्य आपसी झगड़ों एवं तनावों के कारण अच्छा नक्शा नहीं पेश कर पाए और मैकियावेली ने अपने राजनीतिक चिन्तन में शक्तिशाली केन्द्रीकृत प्रभुत्वसम्पन्न राज्य के महत्व पर जोर दिया। उभरते हुए पूँजीपति वर्ग, मध्यम वर्ग की राजनीतिक आवश्यकता राष्ट्रीय राज्य थी। अतः चर्चशाही तथा सामंतशाही चगुल में जकड़े यूरोप में राष्ट्रीय राज्यों की स्थापना के लिए आरम्भ में निरकुश राजाओं का समर्थन किया गया। किन्तु जब राष्ट्रीय राज्य स्थापित हो गए, तब राजशाही की निरकुशता पर करारा प्रहार हुआ और जॉन लॉक (1632–1704) एक ब्रिटिश विचारक थे,

जिन्हें पहला आधुनिक विचारक माना जाता है। इन्होंने शासकों की असीमित शक्ति की समस्या के समाधान के लिए महत्वपूर्ण विचार दिए। शासक के पास शासन चलाने के लिए सीमित और सरकार के प्रति उत्तरदायी विचार के साथ हिचकिचाते हुए लोकतंत्र को परिभाषित करने की बौद्धिक यात्रा की शुरूआत हुई, यह पंक्ति इस बात को प्रमाणित करता है कि लोकतांत्रिक सिद्धान्तों और उसके क्रमिक विकास में लोकतंत्र का सही मतलब और पूरी तरह से सरकार का आधुनिक लोकतांत्रिक रूप पश्चिमी देशों की देन है। चूंकि सभी महत्वपूर्ण शैक्षिक स्तंभ जो बौद्धिकजनों के द्वारा व्याख्यातित है। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद ही यूरोपीय और उत्तर अमेरिकी लोकतांत्रिक देशों से अस्तित्व में आए।

आरम्भ में प्राकृतिक आधिकारों के सिद्धान्त के आधार पर लोकतंत्र का समर्थन किया गया जो जॉन लॉक के दर्शन में अभिव्यक्त हुआ 18वीं तथा 19वीं शताब्दी में बेंथम तथा मिलाने उपयोगिता–अधिकतम व्यक्तियों को अधिकतम सुखों के आधार पर लोकतंत्र का समर्थन किया 19वीं शताब्दी में जब मुक्त प्रतियोगिता पर आधारित समाज में मजदूर वर्ग का गहरा शोषण एक नासूर के रूप में दिखाई पड़ रहा था तथा नकारात्मक शक्तिहीन राज्य मजदूर वर्ग के उभरते हुए आन्दोलन के दबाव में चरमरा रहा था तब कल्याणकारी, सकारात्मक, लोकतंत्रीय राज्य को ग्रीन के दर्शन में नैतिक आधार पर समर्थन मिला। लोकतंत्र को मानव के चहुँमुखी विकास का साधन मानते हुए 'ग्रीन' ने कल्याणकारी लोकतंत्रीय राज्यों का समर्थन किया। बीसवीं शताब्दी में पश्चिमी उदारवादी लोकतंत्र इसी कल्याणकारी लोकतंत्रीय विचारधारा से प्रेरित है।

अठाहरवीं शताब्दी में अमरीकी (1776) तथा फ्रासीसी (1789) क्रान्तियाँ आधुनिक लोकतंत्र के विकास का पहला महत्वपूर्ण चरण थीं। स्वतंत्रता, समानता एवं भाईचारे के नारों द्वारा लोकतंत्र का आदर्श तथा औचित्य लोकतांत्रीय सिद्धांतों का केन्द्र बिन्दु बन गया। उन्नीसवीं शताब्दी में कार्ल मार्क्स ने समाजवादी लोकतंत्र का विचार किया जिनमें मानव द्वारा मानव का शोषण न हो। पूँजीवादी व्यवस्था को क्रान्ति द्वारा समूल नष्ट कर, मजदूर वर्ग के नेतृत्व में स्थापित इन समाजवादी लोकतंत्रों का आरम्भ रूस की क्रान्ति द्वारा 1917 में हुआ। समाजवादी लोकतंत्रों का आधार, दर्शन तथा संस्थात्मक ढाँचा उदारवादी लोकतंत्रों से एकदम भिन्न है।

लोकतंत्र की धारणा का इतिहास इतना लंबा है कि इसकी कोई निश्चित परिभाषा न होना आश्चर्य की बात नहीं। समय, परिस्थितियाँ तथा विभिन्न हितों की आवश्यकतानुसार

विभिन्न युगों के विचारकों ने लोकतंत्र की भिन्न–भिन्न परिभाषाएँ प्रस्तुत है। ईसा से 422 साल पूर्व, यूनानी दार्शनिक **वलीआन** ने लोकतंत्र की परिभाषा देते हुए कहा था कि लोकतंत्रीय शासन वह होगा जो जनता का हो, जनता के द्वारा हो, जनता के लिए हो'' इन्हीं शब्दों को अमेरिका के राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन ने दोहराया। इसी तरह मेयो के अनुसार **''लोकतंत्रीय राजनीतिक व्यवस्था वह जिसमें सार्वजनिक नीतियाँ बहुमत के आधार पर उन प्रतिनिधियों द्वारा बनाई जाए जो जनसाधारण के कारगर नियंत्रण में रहें और जो राजनीतिक स्वतन्त्रता की परिस्थितियों में, राजनीतिक समानता के नियम के अनुसार समय–समय पर चुनावों द्वारा चुने गए हों'' सारटोरी** के अनुसार, **''लोकतंत्रीय व्यवस्था वह है, जो सरकार को उत्तरदायी तथा नियंत्रकारी बनाती हो तथा जिसकी प्रभावकारिता मुख्यतः इसके नेतृत्व की योग्यता तथा कार्यशीलता पर निर्भर हो।'' लिप्से** के अनुसार **''लोकतंत्र की परिभाषा एक ऐसी राजनीतिक व्यवस्था के रूप में दी जा सकती है जहाँ सरकारी पदाधिकारियों को बदलने के नियमित सांविधानिक अवसर उपलब्ध हों,** तथा एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था विद्यमान हो जहाँ जनसंख्या का अधिकतर भाग, राजनीतिक शक्ति के संघर्ष में लगे व्यक्तियों को चुनकर, मुख्य निर्णयों को प्रभावित कर सके'' मेक्फरसन का विचार है कि **''लोकतंत्र सरकारों को चुनने तथा शक्ति प्रदान करने का, या किसी दूसरे तरीके से कानून बनाने और राजनीतिक निर्णयन लेने का तरीका मात्र है।''**

वास्तव में लोकतंत्र नागरिक और राजनीतिक स्वतंत्रता के लिए सहभागी राजनीति से सम्बद्ध प्रणाली है। लोकतंत्र की अवधारणा के संबंध में प्रमुख सिद्धान्त निम्नलिखित हैः

1. लोकतंत्र का पुरातन उदारवादी सिद्धान्त
2. लोकतंत्र का अभिजनवादी सिद्धान्त
3. लोकतंत्र का बहुलवादी सिद्धान्त
4. प्रतिभागी लोकतंत्र का सिद्धान्त
5. लोकतंत्र का मार्क्सवादी सिद्धान्त अथवा जनता का लोकतंत्र

1– लोकतंत्र का पुरातन उदारवादी सिद्धान्त –

लोकतंत्र की उदारवादी परंपरा में स्वतन्त्रता, समानता, अधिकार, धर्म निरपेक्षता और न्याय जैसे अवधारणाओं का प्रमुख स्थान रहा है और उदारवादी चिंतक आरम्भ से ही इन अवधारणाओं को मूर्त रूप देने वाली सर्वोत्तम प्रणाली के रूप में लोकतंत्र की

वकालत करते रहे हैं। तृप्तियों और सामंती प्रभुओं से मुक्ति के बाद समाज के शासन – संचालन की दृष्टि से लोकतंत्र को स्वाभाविक राजनीतिक प्रणाली के रूप में स्वीकार किया गया। मैक्कर्सन का कहना है कि पाश्चात्य जगत में लोकतंत्र में आगमन के पहले ही चयन की राजनीति–प्रतियोगी राज्य व्यवस्था और मार्किट की राज्यव्यवस्था जैसी अवधारणाऐं विकसित हो चुकी थीं। हकीकत में इस अर्थ में उदार राज्य का ही लोकतंत्रीकरण हो गया, न कि लोकतंत्र का उदारीकरण। लोकतांत्रिक भावना के आरंम्भिक चिन्ह टामसमूर (यूरोपिया, 1616) और विस्टैवलै जैसे अग्रेंज विचारकों और अग्रेंज अतिशुद्धवादी (प्यूरिटैनिजन्म) के साहित्य में पाया जा सकता है, किन्तु लोकतांत्रिक भावना की सही शुरूआत सामाजिक संविदा के जन्म के साथ हुई, क्योंकि नागरिकों के सामाजिक अनुबंध की अर्न्तनिहित भावना ही सभी व्यक्तियों की समानता है। थॉमस हाब्स ने अपनी पुस्तक लेवियाथन (1651) में प्रमुख लोकतांत्रिक सिद्धान्तों की वकालत करते हुए लिखा कि सरकार का निर्माण जनता द्वारा एक सामाजिक संविदा के तहत होता है। जॉन लॉक का कहना था, सरकार जनता द्वारा उसी के हित में होनी चाहिए। एडम स्मिथ ने 'मुक्त बजार' का प्रतिमान इस लोकतांत्रिक आधार पर प्रस्तुत किया कि प्रत्येक व्यक्ति को उत्पादन करने खरीदने और बेचने की स्वतन्त्रता है। प्रसिद्ध उपयोगितावादी दार्शनिक मिल और वेथम में पूरी तरह लोकतंत्र का समर्थन किया और उपयोगितावाद के माध्यम से प्रभावी बौद्धिक आधार प्रदान किया, उनके अनुसार लोकतंत्र उपयोगितावाद अर्थात् अधिकतम लोगों के अधिकतम सुख को अधिकतम संरक्षण प्रदान करता है, क्योंकि लोग अपने शासकों से तथा एक दूसरे से संरक्षण की उपेक्षा रखते हैं और इस संरक्षण को सुनिश्चित करने के सर्वोत्तम तरीके हैं, प्रतिनिधिमूलक लोकतंत्र, संवैधानिक सरकार, नियमित चुनाव, गुप्त मतदान, प्रतियोगी दलीय राजनीति और बहुमत द्वारा शासन, जे0 एस0 मिल ने बेंथम द्वारा लोकतंत्र के पक्ष में प्रस्तुत तर्क में एक और बिन्दु जोड़ते हुए कहा है कि लोकतंत्र किसी भी अन्य शासन प्रणाली की तुलना में मानव जाति के नैतिक विकास में सर्वाधिक योगदान प्रदान करता है। उसकी दृष्टि में लोकतंत्र नैतिक आत्मोत्थान और वैयक्तिक क्षमताओं के विकास एवं विस्तार का सर्वोत्तम माध्यम है। इस संबंध में यह उल्लेख है कि बेंथम और मिल दोनों में कोई भी सार्वभौम वयस्क मताधिकार अथवा एक व्यक्ति एक मत के पक्ष में नहीं थे। 1802 तक बेथम ने सीमित मताधिकार की वकालत की और 1809 में सिर्फ सम्पन्न वर्गों के ग्रहस्वामियों के लिए सीमित मताधिकार का नारा दिया और अंतोगत्वा 1817 में सार्वभौम मताधिकार का आवाह्वान किया, लेकिन इस मताधिकार को मर्दों तक सीमित रखा इसी प्रकार मिल भी सार्वभौम वयस्क

मताधिकार के पक्ष में नहीं था, क्योंकि उसे आशंका थी एक वर्ग के लोग बहुसंख्यक होने की स्थिति में अपना प्रभुत्व कायम कर सकते हैं।

और अन्य वर्गों के हित के विरूद्ध सिर्फ अपने हित के नियम कानून बना सकते हैं। आगे चलकर अपनी पुस्तक **'रिप्रेजेनटेटिव गर्वनमेंट'** (प्रतिनिधिमूलक सरकार, 1816) में उसने कुछ लोगों के लिए एक से अधिक मतदान की वकालत की लेकिन खैरात पाने वाले अकिचनों निरक्षरों, दिवालियो, (कर नहीं चुकाने वाले को) अर्थात् उन सभी लोगों को जो संयुक्त रूप से श्रमिक वर्ग का निर्माण करते हैं, इससे वंचित रखा, वह सिर्फ ऐसी प्रतिनिधिमूलक सरकार का हिमायती था। जो आधारभूत समानताओं में दखलंदाजी नहीं करती और मुक्त बाजार और हस्तक्षेप की नीति अपनाकर चलती है। बाद में उदारवादी विचारक लोकतंत्र का समर्थन करते रहे हैं और पश्चिम् यूरोप तथा उत्तरी अमेरिका ने इसकी स्वीकार्यता का और आगे बढ़ाने का काम किया।

लोकतंत्र के संबंध में पुरातन उदारवादी मत को समय–समय पर अनेक विचारकों द्वारा चुनौतियां मिलती रही हैं। प्रथमतः, लोकतंत्र की इस मान्यता पर प्रश्न खड़े किए गए हैं कि प्रत्येक व्यक्ति यह जानता है कि उसके लिए सर्वोत्तम क्या है। लॉर्ड ब्राइस, ग्राहम वाल्स इत्यादि विचारक मानते हैं कि मनुष्य उतना विवेकशील, तटस्थ, जानकार अथवा सक्रिय नहीं है जितना कि प्रजातंत्र के संचालन के लिए उसे मान लिया जाता है। द्वितीयतः लोकतंत्र जनता के शासन की आधारशिला पर टिका होता है, किन्तु यह स्पष्टतः बतलाना आसान नहीं है कि 'शासन' और 'जनता' के बिल्कुल सही अर्थ क्या है। इसलिए सरकार के आधार के रूप में लोकमत एक मिथक है। तृतीयतः लोकतंत्र से अपेक्षा की जाती है कि वह सामान्य हित का काम करेगा, लेकिन सामान्य हित जैसी कोई चीज नहीं भी हो सकती है। किसी भी समाज में सामान्य हित विभिन्न लोगों के लिए विभिन्न अर्थ रख सकता है। चतुर्थतः, पुरातन उदारवादी सिद्धान्त समूह मनोविज्ञान, सामूहिक उत्पीड़न और प्रत्यायन तथा जनोत्तेजक नेतृत्व जैसे कारकों की उपेक्षा कर देता है। पंचमतः, लोकतंत्र में दलीय प्रणाली प्रायः अभिजात्य वर्ग का खेल बन जाती है अथवा उनके द्वारा नियंत्रित होती है जो साधन संपन्न है और वे ही महत्त्वपूर्ण मुद्दों पर निर्णय लेते हैं। फिर, नीति–निर्धारण की प्रक्रिया भी काफी जटिल है। उदारवादियों ने अनावश्यक रूप से इसे सरल, पारदर्शी और न्यायसंगत मान लिया है। और सबसे बड़ी त्रुटि इस सिद्धान्त में यह है कि यह राजनीतिक समानता किन्तु आर्थिक विषमता पर आधारित है।

लोकतंत्र का अभिजनवादी सिद्धान्त,

बीसवीं सदी में राजनीतिक विचारकों ने प्रश्न उठाना शुरू किया कि क्या जनसाधारण प्रतिदिन के जीवन में राजनीति में कोई भूमिका निभा सकते हैं? क्या सामान्य नागरिक, जो अपने जीविकोपार्जन में लगे रहते हैं, राजनीतिक भूमिका निभाने के लिए समय और शक्ति लगा सकते हैं? क्या जनसमूह बिना किसी प्रतिबंध के चुनावी लोकतंत्र के माध्यम से अपनी भावनाओं का खुला प्रदर्शन करता है तो स्वतंत्रता नष्ट हो जाएगी? इन प्रश्नों के उत्तर में ही लोकतंत्र के अभिजनवादी और बहुलवादी सिद्धान्त विकसित हुए हैं।

अभिजन (एलीट) पद का प्रयोग किसी समूह के ऐसे अल्पसंख्यक वर्ग के लिए होता है जो कुछ कारकों की वजह से समुदाय में विशिष्ट हैसियत रखते हैं। यह अल्पसंख्यक वर्ग समाज में सत्ता के वितरण में अग्रणी भूमिका में होता है। राजनीतिक श्रेष्ठीवर्ग, प्रेस्थस के अनुसार, सामुदायिक मामलों में अपने संख्या–बल के अनुपात में कहीं ज्यादा सत्ता का उपभोग करता है।

प्रजातंत्र के संबंध में अभिजन सिद्धान्त का अभ्युदय द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद हुआ इस सिद्धान्त के प्रवर्त्तकों में विल्फ्रेडो पैरेटो, ग्रेटानोमोस्का, रॉबर्ट मिशेल्स और अमेरिकी लेखक जेम्स बर्नहाम तथा, सी. राइट मिल्स प्रमुख हैं। इस सिद्धान्त का मुख्य आधार यह मान्यता है कि समाज में दो तरह के लोग होते हैं–गिने चुने विशिष्ट लोग और विशाल जनसमूह। विशिष्ट लोग हमेशा शिखर तक पहुँचते हैं क्योंकि वे सारी अर्हताओं से सम्पन्न सर्वोत्तम लोग होते हैं। अभिजन वर्ग विशेष रूप से राजनीतिक अभिजन वर्ग, सारे राजनीतिक कृत्यों का निष्पादन करता है, सत्ता पर एकाधिकार कर लेता है और सत्ता से जुड़े सारे लाभ उठाता है। बहुसंख्यक समूह अभिजन वर्ग द्वारा मनमाने ढंग से नियंत्रित और निर्देशित होता है। संगठित अल्पसंख्यक ही हमेशा असंगठित जनसमूह को शासित और निर्देशित करता है। रॉबर्ट मिशेल्स ने 'अल्पतंत्र के लौह कानून' जैसी उक्ति का प्रयोग करते हुए कहा है कि सामान्य वर्गों को अभिजन वर्ग की अधीनता स्वीकार करनी ही चाहिए क्योंकि जनसंख्या का एक विशाल भाग उदासीन कर्मण्य और स्व–शासन में अक्षम होता है। लोकतंत्र के अभिजन सिद्धान्त की मुख्य विशेषताऐं हैं :

(1) लोग समान रूप से योग्य नहीं होते, अतः अभिजन और गैर–अभिजन का निर्माण अपरिहार्य है,

(2) अपनी उचतर योग्यताओं के बल पर अभिजनवर्ग सत्ता–नियंत्रण एवं प्रभविष्णु बन जाता है,

(3) अभिजनवर्ग अनवरत एक जैसा नहीं रहता। इस वर्ग में नए लोग शामिल होते हैं और पुराने लोग बाहर हो जाते हैं,

(4) बहुसंख्यक जनसमुदाय, जो गैर–अभिजनवर्ग`का निर्मायक है, में अधिकांश भावशून्य, आलसी और उदासीन होते हैं, इसलिए एक ऐसा अल्पसंख्यक वर्ग का होना आवश्यक है जो नेतृत्व प्रदान करे और

(5) आज के युग में शासक अभिजनवर्ग में मुख्य रूप से बुद्धिजीवी, औद्योगिक प्रबंधक और नौकरशाह होते हैं।

लोकतंत्र के अभिजन सिद्धान्त का सुव्यवस्थित प्रतिपादन सर्वप्रथम जोसेफ शुम्पीटर ने अपनी पुस्तक "कैपिटलिज्म, सोशलिज्म एंड डेमोक्रेसी" (पूंजीवाद, समाजवाद और लोकतंत्र, 1942) में किया। बाद में सार्टोरी, रॉबर्ट डाल, इक्सटाईन, रेमंड अरोन, कार्ल मैन हियुमंड, सिडनी वर्बा आदि ने अपनी रचनाओं में इस मत का समर्थन किया। लोकतंत्र की यह अवधारणा इस मान्यता पर आधारित है कि जनसंख्या का विशाल भाग अक्षम और तटस्थ होता है और वह योग्यता और क्षमता के आधार पर कुछ लोगों का चुनाव करता है जो राजनीतिक दल का नियंत्रित और संचालित करते हैं। बहुसंख्यक लोग जीविका कमाने में व्यस्त रहते हैं। उन्हें राजनीतिक मामलों में न तो अभिरूचि होती है, न समझ। इसलिए वे अभिजनवर्ग से कुछ लोगों का चयन कर लेते हैं और उनके अनुयायी बन जाते हैं। अभिजन सिद्धान्त के अनुसार आज के जटिल समाज में कार्यक्षमता के लिए विशेषज्ञता आवश्यक है और विशेषज्ञों की संख्या हमेशा कम ही होती है। अतः राजनैतिक नेतृत्व ऐसे चुनिंदा सक्षम लोगों के हाथ में होना आवश्यक है। यह सिद्धान्त लोगों की अतिसहभागिता को भी खतरनाक मानता है, क्योंकि तानाशाही प्रवृत्ति का हिटलर जैसा कोई ताकतवर नेता सत्ता प्राप्त करने के लिए जनसमूह को लामबंद कर लोकतंत्र को ही खत्म कर दे सकता है जिसका सीधा अर्थ है मौलिक स्वतंत्रताओं का अंत। इसलिए उनका दावा है कि लोकतांत्रिक और उदारवादी मूल्यों को बचाए रखने के लिए जनसमूह को राजनीति से अलग रखना जरूरी है। अभिजन सिद्धान्त के अनुसार आम जनता के द्वारा वास्तविक शासन हो ही नहीं सकता। शासन हमेशा जनता के लिए होता है, जनता के द्वारा कभी नहीं, क्योंकि जनता जिन्हें प्रतिनिधि चुनती हैं वे

अभिजनवर्ग के ही होते हैं। दूसरे शब्दों में लोकतंत्र का अर्थ है कि अभिजन वर्गों के बीच प्रतिद्वन्दिता और जनता द्वारा यह निर्णय कि कौन सा अभिजन ऊपर शासन करेगा। इस प्रकार, लोकतंत्र मात्र एक ऐसी कार्यप्रणाली है जिसके द्वारा छोटे समूहों में से एक जनता के न्यूनतम अतिरिक्त समर्थन से शासन करता है अभिजनवादी सिद्धान्त यह भी मानता हैकि अभिजन वर्गों–राजनीतिक दलों, नेताओं, बड़े व्यापारी घरानों के कार्यपालकों, स्वैच्छिक संगठनों के नेताओं और यहां तक कि श्रमिक संगठनों के बीच मतैक्य आवश्यक है ताकि लोकतंत्र की आधारभूत कार्यप्राणाली को गैर जिम्मेदार नेताओं से बचाया जा सके। इससे यह स्पष्ट होता है कि बाह्य तौर पर तो अभिजन वर्ग सिद्धान्त लोकतंत्र के विचार को अधिक व्यवहारवादी और आनुभविक बनाने का दावा करती है, लेकिन अंततः यह लोकतंत्र को एक ऐसे रूढ़िवादी राजनीतिक सिद्धान्त में बदल देता है जो उदारवादी अथवा नव–उदारवादी यथास्थितिवाद से संतुष्ट हो जाता है और इसके स्थायित्व को बनाए रखना चाहता है।

अभिजनवाद की कई विचारकों ने आलोचना की है जिनमें सी. बी. मैक्फर्सन, ग्रीम डंकन, बैरी होल्डन, रॉबर्ट डाल आदि प्रमुख हैं। इस सिद्धान्त के विरूद्ध मुख्य आपत्तियां निम्नलिखित है :

(1) अभिजनवाद लोकतंत्र का अर्थ ही विकृत कर देता है और इसकी आधारभूत विशेषताओं की उपेक्षा कर इसे स्वेच्छाचारी बना देता है। यदि जनता का काम प्रतिनिधियों को चुनना भर ही है तो शासन संचालन में उनके पास बोलने–कहने का अधिकार नहीं रह जाता और ऐसी स्थिति में प्रणाली अलोकतांत्रिक बन जाती है।

(2) यह सिद्धान्त लोकतंत्र की परंपरागत पुरातन अवधारणा के नैतिक उद्देश्य को समाप्त कर देता है पुरातन अवधारणा के अनुसार लोकतंत्र का लक्ष्य मानवजाति का उन्नयन है, लेकिन अभिजन सिद्धान्त इस नैतिक पक्ष की अवहेलना कर देता है और पूरी स्थिति अल्पसंख्यक अभिजनवर्ग के शासन की निष्क्रिय स्वीकृति हो जाती है।

(3) अभिजन सिद्धान्त सहभागिता, जो लोकतांत्रिक शासन का केन्द्रीय तत्त्व है, का महत्त्व घटा देता है और दावा करता है कि सहभागिता संभव है ही नहीं। इस तरह जनता द्वारा शासन असंभव हो जाता है।

(4) अभिजन सिद्धान्त एक सामान्य व्यक्ति को राजनीतिक दृष्टि से अक्षम और निष्क्रिय रूप से चित्रित करता है, एक ऐसा व्यक्ति जो अपना जीवन–निर्वाह करता है, शाम में अपने परिवार या मित्रों के बीच अथवा मीडिया के साधनों के उपयोग में अपना समय बिताता है और श्रेष्ठी समूहों में से किसी एक को समय–समय पर चुनने के अतिरिक्त कुछ नहीं करता।

(5) अभिजन सिद्धान्त लोकतांत्रिक प्रक्रिया के द्वारा मौलिक परिवर्तन लाने के बदले प्रणाली के स्थायित्व बनाए रखने पर ही विशेष बल देता है। उसका मुख्य उद्देश्य लोकतांत्रिक प्रणाली को कायम रखना है। वह सामाजिक आन्दोलन को लोकतंत्र के लिए खतरा और अभिजनवर्ग द्वारा व्यवस्थित कानूनी प्रक्रिया का विघटनकारी मानता है।

लोकतंत्र का बहुलवादी सिद्धान्त

लोकतंत्र का बहुलवादी सिद्धान्त भी जन सामान्य के बदले समूहों की भूमिका पर बल देता है। कुछ विचारकों ने लोकतंत्र संबंधी ऐसे सिद्धान्तों का निरूपण किया है जो अभिजन सिद्धान्त और बहुलवादी सिद्धान्त का मिश्रण है। लेकिन यह भी सही है कि बहुलवादी सिद्धान्त की उत्पत्ति अभिजन सिद्धान्त की आंशिक प्रतिक्रिया के रूप में हुई है। अभिजन सिद्धान्त एक ऐसी स्थिति के निर्माण से संतुष्ट है जिसमें सत्ता ऐसे अभिजनवर्ग में निहित होती है जो महत्त्वपूर्ण निर्णय लेता है, लेकिन बहुलवादी एक ऐसी प्रणाली पर जोर देता है जो उदारवादी लोकतंत्र में अभिजनवाद की प्रवृत्ति को निष्प्रभावी कर देगा और सही जनाकांक्षा को प्रकट करेगा।

बहुलवाद की अवधारणा वैसे तो पुरानी है, किन्तु बीसवीं सदी में आधुनिक उदारवादी चिंतन का यह एक महत्त्वपूर्ण अंग बन गया। सामान्य अर्थ में बहुलवाद सत्ता को समाज में एक छोटे से समूह तक सीमित करने के बदले उसे प्रसारित और विकेन्द्रीकृत कर देता है। आधुनिक औद्योगिक और प्रौद्योगिक काल में, बहुलवादियों के अनुसार, सत्ता विखंडित हो गई है और इसमें प्रतियोगी सार्वजनिक और निजी समूहों की साझेदारी बढ़ गई है। उच्च स्थानों पर आसीन लोगों के पास पूर्व की भांति सत्ता नहीं रह गई है, क्योंकि वे मुख्य रूप से परस्पर विरोधी स्वार्थों के बीच मध्यस्थ की भूमिका निभाने लगे। विभिन्न समूह अपने नेतृत्व के माध्यम से मध्यस्थता करते हैं और इसके जरिए व्यक्ति का भी प्रतिनिधित्व हो जाता है। यद्यपि औद्योगिक और प्रौद्योगिक एकीकरण और प्रौद्योगिक अभियाचनाओं के कारण सत्ता कुछ ही व्यक्तियों में केन्द्रित हो गई है लेकिन

अल्पसंख्यक किन्तु वृहत्तर, हित–समूहों के बीच प्रतियोगिता सार्वजनिक हित के पक्ष में जाती है। बड़े व्यापारी घरानों, श्रम और सरकार के बीच प्रतियोगिता ने प्रत्येक समूह को अपनी सत्ता का दुरुपयोग करने पर लगाम कसी है। इस प्रकार, नागरिकों के बीच संपत्ति, शिक्षा और सत्ता में असमानता को निम्न प्रभावित कर दिया जाता है क्योंकि संगठन और समूह आशा से अधिक प्रतिनिधित्व प्रदान करते हैं और इससे लोकतंत्र अधिक वास्तविक बनता है और इस धर्म में अधिक व्यवहार्य भी सिद्ध होता है। भारत का ही उदाहरण लें। यहां **महेन्द्र सिंह टिकैत का किसान संगठन** और **नर्मदा बचाओ आन्दोलन** ऐसे जन आन्दोलन है जो लाखों गरीब और अशिक्षित लोगों की आवाज बन जाते हैं। और लोकतंत्र को निश्चय ही अधिक वास्तविक बनाते हैं। यह सही है कि अभिजनवर्ग और उनके समाचार मीडिया उनकी आलोचना करते हैं और उन्हें प्रगति का बाधक बताते हैं और यदा कदा सर्वोच्च न्यायालय भी उन्हें अपने आन्दोलनों को रोक देने के लिए बाध्य करता है, किन्तु इस सब के बावजूद ऐसे जनान्दोलन भारतीय लोकतंत्र को अधिक सार्थक और प्रतिनिधिमूलक बनाते हैं। **लोकतंत्र की बहुवादी अवधारणा का विकास मुख्य रूप से अमेरिका में हुआ।** इसके प्रणेताओं में एस. एम. लिण्सेट, रॉबर्ट डाल, वी. प्रेस्थस, एफ. हंटर आदि प्रमुख हैं। उनका तर्क है कि राजनीतिक सत्ता उतनी सरल नहीं है जितनी दिखाई पड़ती है, यह विभिन्न समूहों, संगठनों, वर्गों और संघों समेत अभिजन वर्ग जो आमतौर पर समाज को नेतृत्व प्रदान करता है के बीच बंटी हुई है। विभिन्न स्वार्थ समूह अपनी मांगों को सीधे तौर पर तो प्रस्तुत करते ही हैं, विभिन्न राजनीतिक दलों के माध्यम से भी पेश करते हैं। बहुलवादी लोकतंत्र की एक परिभाषा इस प्रकार दी गई है। यह एक ऐसी राजनीतिक प्रणाली है जिसमें नीतियां विभिन्न समूहों के बीच पारस्परिक परामर्श और विचारों के आदान प्रदान के द्वारा निर्धारित की जाती है क्योंकि कोई भी समूह या अभिजनवर्ग इतना सशक्त नहीं है कि वह अकेले सरकार पर इतना दबाव डाल सके कि वह उसकी सारी माँगों को पूरा कर सके।

बहुलवादी सत्ता की इस साझेदारी का अनुमोदन करते हैं कि इससे लाभ यह होता है कि कोई भी सामाजिक समूह सरकार की नीति–निर्धारण की प्रक्रिया पर इस कदर हावी नहीं हो पाता कि वह अन्य वर्गों के हितों की अनदेखी कर सके लेकिन, बहुलवादी सिद्धान्तकारों की एक मान्यता यह भी थी कि सभी नागरिकों को राजनीतिक क्षेत्र में अपने हितों को संघठित करने और उन्हें साधने के लिए वैधानिक अवसर और आर्थिक संसाधन प्राप्त है। इस अवसर के बगैर नागरिक किसी प्रस्तावित कदम का

समर्थन या विरोध नहीं कर सकते। बहुलवादी विचारक राजनीति को व्यक्तियों के बदले समूहों के बीच निश्चयों की प्रक्रिया मानते हैं और घोषणा करते हैं कि लोकतंत्र सर्वोत्तम तरीके से तभी काम करता है जब नागरिक अपने विशेष हितों के समर्थन समूह से जुड़ जाते हैं। वे इस बात पर विशेष बल देते हैं कि किसी समाज में व्यक्तियों की सक्रिय सहभागिता होनी चाहिए और अपने संकल्प को क्रियान्वित करने के लिए विभिन्न समूहों से जुड़ जाना चाहिए। साथ ही, सारे समूहों और उनके सदस्यों को यह स्वीकार करना चाहिए कि चुनाव राजनीतिक निर्णयों में विशाल समुदाय की सहभागिता का एक कारगर हथियार है। इसी तरह, अभिजन वर्ग के सारे समूह और सदस्य पारस्परिक प्रतियोगिता के द्वारा लोकतंत्र को संभव बनाते हैं। इससे स्पष्ट है कि बहुलवादी सिद्धान्त वास्तव में अभिजनवाद का पूर्णतः विरोध नहीं करता क्योंकि इसके प्रवर्तकों के अनुसार अभिजनवर्ग का अस्तित्व एक हकीकत है और वे उसकी अवस्थिति से संतुष्ट है। यही कारण है कि बहुलवादी सिद्धान्त कभी–कभार अभिजनवर्ग सिद्धान्तों से आंशिक रूप में ही भिन्न समझा जाता है। महान अमेरिकी राजनीतिक विचारक **रॉबर्ट डाल लोकतंत्र की अभिजनवादी और बहुलवादी अभिधारणाओं को संयुक्त करते हुए अपनी लोकतांत्रिक अभिधारणा को बहुतंत्र की संज्ञा देता है।** उसके अनुसार, जनता समूहों और अभिजनवर्ग के राजनीतिज्ञों दोनों के माध्यम से सक्रिय होती है। उसने अनेक ऐसे समुदायों का हवाला दिया है जो सरकार के नीति–निर्धारण को प्रभावित करते हैं– जैसे, व्यापारी घराने और उद्योगपति, सौदागर, श्रमिक संगठन, किसान संगठन, उपभोक्ता, मतदाता इत्यादि। ऐसा नहीं है कि उनकी पूरी कार्यसूची क्रियान्वित हो ही जाती है। सारे समूह समान रूप से सशक्त नहीं होते और अनेक समूह अपनी मनोनुकूल नीतियों को मनवाने की अपेक्षा प्रतिकूल नीतियों की रोकथाम में ज्यादा प्रभावी होते हैं।

बहुलवादी सिद्धान्त के विरूद्ध उठाई जाने वाली आपत्तियों में निम्नलिखित प्रमुख हैं :

(1) बहुलवादी सिद्धान्त इस मान्यता पर आधारित है कि अलग–अलग समूहों के बीच हितों के टकराव के फलस्वरुप उन हितों अथवा उनके अंश को प्रोत्साहन मिलता है जो स्वीकार किए जाने के योग्य होते हैं। लेकिन कभी–कभी ऐसा देखा जाता है कि इस टकराव के कारण यथास्थिति अथवा गत्यावरोध के हालात बन जाते हैं। कभी–कभी तो और बदतर स्थिति हो जाती है जब एक समूह–विशेष अपनी संपूर्ण कार्य सूची को मनवा लेता है जिसके फलस्वरुप अन्य समूह आक्रोशित हो उठते हैं।

(2) बहुलवादी सिद्धान्त का सूत्र–वाक्य है कि लोग अपने हितों की सीधे तौर पर पूर्ति चाहते हैं। लेकिन यह सर्वथा और सर्वदा सत्य नहीं होता। लोग राष्ट्रवादी अथवा अन्य अभिप्रेरणाओं से भी संचालित हो सकते हैं।

(3) माइकल मावगोलिस के अनुसार बहुलवादी सिद्धान्त समाज के संसाधनो को संवर्द्धित या पुनर्वितरित करने के तरीके खोजने में अक्षम है। नतीजतन, निम्नजातियों, महिलाओं, आदिवासियों तथा परंपरागत रूप से समाज के अन्य वंचित तबकों को साधन संपन्न वर्गों की भांति राजनीति में सहभागिता के समान अवसर नहीं मिल पाते।

(4) मावगोलिस का यह भी कहना है कि बहुलवादियों के पास यथोचित आर्थिक और पर्यावरणीय मूल्य पर सामाजिक समानता और विकास की कोई योजना नहीं है।

लोकतंत्र का सहभागिता सिद्धान्त

राजनीति क्रियाकलाप में सहभागिता लोकतंत्र का मूल तत्त्व है, लेकिन खासकर पूंजीवादी लोकतंत्रों में यह प्रायः चुनावों में मतदान तक ही सीमित रहता है। लोकतंत्र का सहभागिता सिद्धान्त संवर्द्धित भागीदारी को एक आदर्श भी मानता है और कृत्यात्मक आवश्यकता भी। इस सिद्धान्त के प्रमुख प्रस्तावकों में 1960 के दशक से कैरोल पेर्लमैन, सी. बी, मैक्फर्सन और एन. पॉलैन्ट जास जैसे वामपंथी विचारक प्रमुख रहे हैं। सहभागी लोकतंत्र की दो प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित है :

(1) निर्णय लेने की प्रक्रिया का इस रूप में विकेन्द्रीकरण कि उन निर्णयों से प्रभावित होने वाले लोगों तक नीति निर्धारण किया जा सके।

(2) नीति–निर्धारण में सामान्यजन की प्रत्यक्ष हिस्सेदारी। सहभागिता सिद्धान्त के समर्थकों के अनुसार लोकतंत्र वास्तविक अर्थ प्रत्येक व्यक्ति की समान सहभागिता है, न कि मात्र सरकार को स्थायी बनाए रखना जैसा कि अभिजनवादी अथवा बहुलवादी सिद्धान्तकार मान लेते हैं। सच्चे लोकतंत्र का निर्माण तभी हो सकता है जब नागरिक राजनीति दृष्टि से सक्रिय हों और सामूहिक समस्याओं में निरंतर अभिरूचि लेते रहें। सक्रिय सहभागिता इसलिए आवश्यक है ताकि समाज की प्रमुख संस्थाओं के पर्याप्त विनिमय हों और राजनीतिक दलों में अधिक खुलापन और उत्तरदायित्व के भाव हों।

सहभागिता लोकतंत्र के सिद्धान्तकारों के अनुसार यदि नीतिगत निर्णय लेने का जिम्मा केवल अभिजन वर्ग तक सीमित रहता है तो उसके लोकतंत्र का वास्तविक स्वरुप

बाधित होता है। इसलिए वे इसमें आम आदमी की सहभागिता की वकालत करते हैं। उनका मानना है कि यदि लोकतांत्रिक अधिकार कागज के पन्नों अथवा संविधान के अनुच्छेदों तक ही सीमित रहे तो उन अधिकारों का कोई अर्थ नहीं रह जाता, अतः सामान्य लोगों द्वारा उन अधिकारों का वास्तविक उपभोग किया जाना आवश्यक है। लेकिन यह उपभोग भी तभी संभव है जबकि व्यक्ति स्वतंत्र और समान हो। यदि लोगों का विश्वास हो कि नीतिगत निर्णयों में कारगर सहभागिता के अवसर वास्तव में विद्यमान हैं तो वे निश्चय ही सहभागी बनेंगे। ऐसी स्थिति में वे प्रभावी ढंग से साझेदारी भी कर सकेंगे। जिस लोकतंत्र में, चाहे वह राजनीतिक हो या प्राविधिक या शिल्पतांत्रिक अभिजनवर्ग का वर्चस्व होता है वह नागरिकों के लिए संतोषप्रद नहीं होता और आम लोग सहभागिता के द्वारा ही उस वर्ग के वर्चस्व को समाप्त कर सकते हैं। सहभागिता सिद्धान्त के समर्थकों का यह भी कहना है कि आज के औद्योगिक और प्रौद्योगिक समाजों में शिक्षा का स्तर उँचा हो गया है और बौद्धिक तथा राजनैतिक चेतना से संपन्न समाज में अभिजन और गैर–अभिजन के बीच की खाई कम हुई है। इसलिए कार्यक्षमता और विकास की दृष्टि से अधिकांश मामलों में सामान्य लोगों की सहभागिता कोई बाधा नहीं रह गई है। सच पूछा जाए तो सत्ता का विकीर्णन ही अत्याचार के विरूद्ध सबसे मजबूत सुरक्षा–कवच है। सहभागिता पर आधारित लोकतंत्र ही नागरिकों को तटस्थता, अज्ञान और अलगाव से बचा सकता है और लोकतंत्र की बुनियादी जरूरतों को पूरा कर सकता है।

प्रश्न है, आम नागरिक की राजनीतिक सहभागिता कैसे हो? इसके सिद्धान्तकारों ने इसके निम्नलिखित तरीके बताए है :

1. चुनावों में मतदान

2. राजनीतिक दलों की सदस्यता

3. चुनावों में अभियान कार्य

4. राजनीतिक दलों की गतिविधियों में शिरकत

5. संघों, स्वैच्छिक संगठनों और गैर–सरकारी संगठनों जैसे दबाव तथा लॉबिंग समूहों की सदस्यता और सक्रिय साझेदारी

6. प्रदर्शनों में उपस्थिति

7. औद्योगिक हड़तालों में शिरकत (विशेषकर जिनके उद्देश्य राजनीतिक हों अथवा जो सार्वजनिक नीति को बदलने अथवा प्रभावित करने को अभिप्रेत हों)

8. सविनय अवज्ञा आन्दोलन में भागीदारी, यथा–कर चुकाने से इन्कार इत्यादि

9. उपभोक्ता परिषद् की सदस्यता

10. सामाजिक नीतियों के क्रियान्वयन में सहभागिता

11. महिलाओं और बच्चों के विकास, परिवार नियोजन, पर्यावरण संरक्षण, इत्यादि सामुदायिक विकास के कार्यों में भागीदारी, इत्यादि।

मैक्फर्सन की टिप्पणी है कि आज के राष्ट्र क्षेत्र और जनसंख्या की दृष्टि से विशालकाय हैं और यह संभव नहीं है कि सारे नागरिक रोजमर्रे के राजनीतिक विमर्श या नीति निर्धारण में शामिल हों, फिर भी यदि कुछ शर्तों को स्वीकार कर लिया जाए तो सहभागिता का अनुपात निश्चित रूप से बढ़ाया जा सकता है, ये शर्ते हैं :

- ❖ यदि राजनीतिक दल "प्रत्यक्ष लोकतंत्र" के सिद्धान्त के अनुसार लोकतांत्रिक हो,
- ❖ यदि राजनीतिक दल सच्चे अर्थ में संसदीय ढाँचे के अन्तर्गत कार्य करते हों, और
- ❖ यदि राजनीतिक दल के क्रिया कलाप श्रमिक संगठनों, स्वैच्छिक संस्थाओं तथा ऐसे ही अन्य निकायों से संपूरित होते हों।

'डेविड हेल्ड' [3] ने सहभागिता सिद्धान्त पर आपत्ति उठाते हुए कहा कि यह पुरातन/अभिजन बहुलवादी जैसे सिद्धान्तों से बेहतर तो है, लेकिन इससे यह स्पष्ट नहीं हो पाता कि कैसे और क्यों सिर्फ सहभागिता मानवीय विकास, जो लोकतंत्र का एक महत्त्वपूर्ण लक्ष्य है, के उच्चतर स्तर को प्राप्त कर सकेगी। इस बात का कोई साक्ष्य अथवा तर्क संगत आधार नहीं मिलता कि सहभागिता नागरिकों को सामान्य हित के प्रति अधिक सहयोगशील और प्रतिबद्ध बनाएगी। हेल्ड इस केन्द्रीय मान्यता को भी आवश्यक रूप से सत्य नहीं मानता कि आम लोग अपने जीवन को प्रभावित करने वाले मुद्दों पर नीति निर्धारण करने और निर्णय लेने में अधिक उत्तरदायी बनना चाहते हैं। यदि वे सामाजिक–आर्थिक मामलों और नीतियों के निर्धारण में भाग लेना नहीं चाहें तो उन्हें इसके लिए बाध्य करना उचित नहीं माना जा सकता। फिर भी मान लिया जाए कि आम लोग अपने लोकतांत्रिक रूझान को यदि एक सीमा से आगे ले जाना चाहें और बुनियादी स्वतंत्रता और अधिकार के मामले में दखलंदाजी करने लगे तो लोकतंत्र का क्या हश्र

[3] Held david: cosmopolitan democracy

होगा, ऐसे प्रश्नों पर सहभागिता सिद्धान्त के समर्थकों ने पर्याप्त ध्यान नहीं दिया है। कुक और मॉर्गन के अनुसार सहभागी लोकतंत्र को असली जामा पहनाना उतना आसान नहीं है जितना ऊपरी तौर पर प्रतीत होता है। उदाहरणार्थ, सहभागी इकाई के सम्यक् आकार और कृत्य क्या हों फिर, नागरिकों की सक्रिय सहभागिता के बल पर स्थानीय स्तरों पर लिए गए निर्णयों को संपूर्ण राष्ट्र के हित के साथ किस प्रकार समन्वित एवं समेकित किया जाएगा? एक स्थानीय सहभागी इकाई के नीतिगत मामले दूसरी इकाई के विरोधी भी तो हो सकते हैं। फिर एक बात यह भी है कि अधिकतम संभव सहभागिता के बल पर लिए गए निर्णय आवश्यक नहीं कि सर्वाधिक कारगर निर्णय हों ही। सहभागिता सिद्धान्त के समर्थक कार्यक्षमता एवं प्रभाव के मुद्दों पर पर्याप्त ध्यान नहीं देते।

लोकतंत्र का मार्क्सवादी सिद्धान्त

आम धारणा के विपरीत लोकतंत्र के विचार को मार्क्स और पश्चवर्ती मार्क्सवादी विचारकों ने भी स्वीकार कर लिया है। इतना अवश्य है कि उनकी अभिधारणाओं से पूर्णतः भिन्न है। चूंकि मार्क्सवादियों का मानना है कि पूंजीवादी व्यवस्था में लोकतांत्रिक अधिकार सही अर्थ में आम जनता के पास न होकर सिर्फ साधन–संपन्न वर्ग के हाथ में होता है, इसलिए वे एक ऐसे लोकतंत्र की स्थापना चाहते हैं जो 'जनता का लोकतंत्र' **(पीपल्स डेमोक्रेसी)** हो। मार्क्सवादी लोकतंत्र में उत्पादन के साधनों पर स्वामित्व को खत्म करने और सर्वहारावर्ग द्वारा अर्थव्यवस्था को नियंत्रित करने के पश्चात् समाजवादी लोकतंत्र की स्थापना होती है।

मार्क्स उदारवादी संवैधानिक लोकतंत्र का आलोचक था क्योंकि उसके अनुसार पूंजीवादी लोकतंत्र का आधार एक ऐसी आर्थिक प्रणाली होती है जिसमें उत्पादन के साधन हमेशा पूंजीपति वर्ग के नियंत्रण में होते हैं। यही पूंजीपति वर्ग अपनी धन–शक्ति के बल पर राजनीतिक व्यवस्था को नियत्रंण में रखकर सरकार और राज्य–तंत्र को अपने अधीन रखता है। राज्य सत्ता, अधिकार और विशेषाधिकार पूर्णतः उसी वर्ग के पास होते हैं और श्रमिकवर्ग के पास सिर्फ नाम की स्वतंत्रता और अधिकार होते हैं। राज्य का अधिकारी वर्ग, न्यायालय और पुलिस बल भी तटस्थ न होकर प्रभुतासम्पन्न वर्ग के ही हित साधक होते हैं। इसलिए, लोकतंत्र एक ऐसी शासन–प्रणाली का रूप धारण कर लेता है जो शासक वर्ग की सत्ता और विशेषाधिकार को बढ़ावा देने और उच्च वर्ग के हितों को साधने के काम आता है।

इसके बावजूद, मार्क्स और एंगेल्स ने यह स्वीकार किया है कि संपन्न पूंजीपति वर्ग द्वारा नियंत्रित उदारवादी बुर्जुआ लोकतंत्र भी किसी हद तक अपने नागरिकों को वास्तविक अधिकार देने के ऐतिहासिक दावे कर सकता है और श्रमिक वर्ग इसका इस्तेमाल अपने को संगठित कर सर्वहारा की क्रांति के लिए कर सकते हैं। उदारवादी लोकतंत्रों में आम मताधिकार का उपयोग सर्वहारावर्ग की क्रांतिकारी आन्दोलन की पृष्ठभूमि तैयार करने में किया जा सकता है। मार्क्सवादी यह अवश्य मानते हैं कि कुछ स्थितियों में हिंसक क्रांतिकारी आन्दोलन की आवश्यकता नहीं हो सकती है लेकिन ऐसी स्थितियों की संभावना अत्यल्प है। अगर समाजवादी क्रांति के लक्ष्य को पूरा करने के लिए संसदीय मार्ग अपनाया भी जाता है तो यह अन्य प्रकार के संघर्षों में एक अतिरिक्त सहायक उपकरण ही हो सकता है। मार्क्सवादी विश्लेषण के अनुसार वास्तविक लोकतंत्र सर्वहारा के अधिनायकवाद को कायम करने के लिए सर्वहारावर्ग की क्रांति के पश्चात् ही संभव है क्योंकि उदारवादी बुर्जुआर लोकतंत्र का आदर्श प्रतिभागिता का हो सकता है, लेकिन यथार्थ में साधनहीन श्रमिक वर्ग की सहभागिता उसमें नहीं हो पाती। अपनी रचना **'द क्रिटिक ऑफ द गोथा प्रोग्राम' (गोथा कार्यक्रम की समीक्षा– 1875)** में मार्क्स और एंगेल्स ने अपनी अवधारणा को स्पष्ट करते हुए लिखा था 'पूंजीवादी और साम्यवादी समाज के बीच में ही एक का दूसरे में रूपांतरण की अवधि निहित होती है। इसी से मेल खाती एक राजनीतिक संक्रमण की अवधि भी होती है जिसमें राज्य सर्वहारा वर्ग के अधिनायकवाद और साम्यवाद में भेद किया है। वे इसे एक मध्यवर्ती काल मानते हैं। इसकी परिणति साम्यवादी समाज की स्थापना में होती है। यह समझना जरूरी है कि कार्ल मार्क्स और एंगेंल्स ने अधिनायकवाद पद का प्रयोग किस अर्थ में किया है। उनकी दृष्टि में प्रत्येक राज्य शासक सामाजिक वर्ग का अधिनायकवाद रहा है। पूंजीवादी व्यवस्था में यह वर्ग संपन्न औद्योगिक और व्यापारी बुर्जुआ का था जबकि उनकी अपनी अवधारणा वाला राज्य क्रांति के तुरंत बाद सर्वहारा के नियंत्रण वाला राज्य होगा और तब समाजवादी पुननिर्माण की प्रक्रिया शुरू होगी जिसका अंत एक वर्गहीन समाज की स्थापना में होगा। इसलिए, उनकी दृष्टि में लोकतंत्र और सर्वहारा अधिनायकवाद एक ही साथ चलेंगे, ठीक वैसे ही जैसे कि पूंजीवादी व्यवस्था में उदारवादी लोकतंत्र व्यवहार्यतः लोकतंत्र भी और उद्योगपतियों एवं व्यापारिक घरानों के बुर्जुआ वर्ग का अधिनायकवादी शासक भी। इसीलिए, मार्क्स और एंगेल्स का कहना था कि क्रांति और श्रमिक वर्ग के आधिपत्य के पश्चात् की प्रणाली 'जनता के लोकतंत्र' की प्रणाली होगी। जनता से

उनका तात्पर्य मुठ्ठीभर संपन्न बुर्जुआ के स्थान पर जनसामान्य की विशाल आबादी से था। मार्क्स द्वारा प्रतिपादित 'जनता का लोकतंत्र' की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं :

(1) जनता का लोकतंत्र तत्त्वतः एक ऐसा लोकतंत्र है जिसमें श्रमिक वर्ग का एक विशाल भाग राजनैतिक एवं नीतिगत निर्णय के अधिकार अल्पसंख्यक अभिजनवर्ग से अपने हाथ में ले लेता है। इस तरह, राजकीय एवं आर्थिक व्यवस्था के अधिकार अल्पसंख्यक उद्योगपतियों और व्यापारिक घरानों के पास नहीं रह जाते।

(2) जनता के लोकतंत्र में उत्पादन के साधनों – भूमि, कल कारखानों इत्यादि पर जनता का स्वामित्व होता है, राज्य सारी उत्पादक पूंजीगत परिसंपतियों को अपने नियंत्रण में ले लेता है और उत्पादन–क्षमता में दुरतगति से वृद्धि होती है। इसमें प्रत्येक नागरिक के लिए नियोजन के समान अवसर होते हैं।

(3) समाजवादी लोकतंत्र में कार्यकारी और विधायी कृत्यों का समेकीकरण हो जाता है और क्रांति के पश्चात् सारे कार्मिक सीधे तौर पर चुने जाते हैं तथा पुलिस और सैन्य बल का स्थान नागरिक सेना ले लेती है। सारे सरकारी सेवक श्रमिक के रूप में समान वेतन पाते हैं।

(4) सामाजिक स्तर पर विरासत का चलन समाप्त हो जाता है, सभी बच्चे निःशुल्क शिक्षा प्राप्त करते हैं, गांवों और शहरों के बीच आबादी का न्यायसंगत वितरण होता है और सभी नागरिकों की बुनियादी जरूरतों को पूरा करने के लिए उत्पादक शक्तियों के संवर्धन के लिए पुरजोर कोशिश की जाती है।

(5) मार्क्सवादी विश्लेषण के अनुसार जनता का लोकतंत्र पूंजीवाद और साम्यवाद के बीच की स्थिति है। व्यक्तिगत संपत्ति और वर्गों के उन्मूलन के पश्चात् जब समाजवादी समाज का निर्माण हो जाता है तो वह क्रमशः पूर्ण साम्यवाद की ओर अग्रसर होने लगता है। पूर्ण साम्यवाद की अवस्था में राज्य व्यवस्था का अंत हो जाता है और उसके स्थान पर वास्तविक अर्थ में एक प्रकार का स्व–शासन कायम हो जाता है।

समाजवादी समाजों की रचना ने मार्क्सवादी विचारों को और आगे बढ़ाया, लेकिन जिसने रूस में 1917 में प्रथम समाजवादी राज्य की स्थापना की ने मार्क्सवादी चिंतन की नई व्याख्याएं प्रस्तुत की। उसने सर्वहारा के अधिनायकवाद को स्वीकार किया और समाजवादी क्रांति के इसके महत्त्व पर बल दिया, लेकिन उसने इसके साथ यह भी जोड़

दिया कि सर्वहारा वर्ग का अधिनायकवाद विशाल सर्वहारा संगठन या साम्यवादी दल द्वारा ही प्रयोग में लाया जा सकता है । उसने लोकतंत्र की तीन अवस्थाएं बताईः पूंजीवादी लोकतंत्र, समाजवादी लोकतंत्र और साम्यवादी लोकतंत्र। उसके अनुसार लोकतंत्र राज्य का एक स्वरुप है और वर्ग–विभाजित समाज में सरकार अधिनायकवादी और लोकतांत्रिक दोनों होती है। यह एक वर्ग के लिए लोकतंत्र है जो दूसरे के लिए अधिनायकवाद। बुर्जुआ वर्ग चूंकि अपने हित साधन में पूंजीवादी प्रणाली को नियंत्रित और संचालित करता है, इसलिए उसे सत्ता से बेदखल कर समाजवादी लोकतंत्र को स्थापित करना आवश्यक है। लेकिन स्वीकार करता है कि नव स्थापित समाजवादी राज्य उतना ही दमनात्मक होता है जितना कि पूंजीवादी राज्य। सर्वहारा वर्ग के शासन को लागू करने के लिए यह यह आवश्यक भी है। चूंकि बुर्जुआ काफी शक्तिशाली होता है, इसलिए समाजवादी लोकतंत्र के आरंभिक दौर में सर्वहारा वर्ग के लिए आवश्यक हो जाता है कि वह बलपूर्वक पूंजीवादी वर्ग का उन्मूलन कर दे। सर्वहारा के अधिनायकवाद के समक्ष दो लक्ष्य होते हैं :

(1) क्रांति को बचाना, और

(2) एक नई सामाजिक–आर्थिक व्यवस्था को संघटित करना

लेनिन के अनुसार यह कार्य मुख्य रूप से साम्यवादी दल को करना पड़ता है। इस तरह, लेनिन की दृष्टि में पूंजीवादी लोकतंत्र में सच्चा लोकतंत्र नहीं होता, जबकि सर्वहारा के अधिनायकवाद में पूर्वापेक्ष अधिक लोकतंत्र होता है, क्योंकि यह बहुसंख्यक सर्वहारा वर्ग का शासन है। उसका यह भी दावा था कि अन्ततः सच्चे साम्यवाद की प्राप्ति के साथ लोकतंत्र अनावश्यक हो जाएगा, क्योंकि उस समाज के सन्दर्भ में इसका कोई अर्थ नहीं रह जाएगा।

मार्क्स, एंगेल्स और लेनिन के बाद अनेक विचारकों ने मार्क्सवाद की अनेक व्याख्याएं प्रस्तुत की है। इनमें एडवर्ड बर्नस्टाइन, कार्ल कॉट्स्की, रोजा लक्जमवर्ग आदि प्रमुख हैं। एडवर्ड बर्नस्टाइन का दावा है कि पूंजीवाद की मार्क्सवादी व्याख्या गलत है और सर्वहारा का अधिनायकवाद न तो आवश्यक है, न वांछनीय। उसके अनुसार, राजनीतिक लोकतंत्र और उदारवादी स्वतंत्रताएं अधिक महत्त्वपूर्ण है। लेनिन की यह मान्यता सही नहीं है कि सर्वहारा का अधिनायकवाद आवश्यक है। बर्नस्टाइन का तर्क है कि जब तक सर्वहारा वर्ग बहुमत हासिल नहीं कर लेता , समाजवादी क्रांति असंभव है और यदि वह बहुमत हासिल कर लेता है जो अधिनायकवाद की जरूरत ही नहीं रहती। उसके अनुसार

लोकतंत्र आवश्यक है और मार्क्सवादी समाजवादी सिद्धान्त के साथ लोकतांत्रित परंपरा को जोड़कर ही समाजवाद की स्थापना हो सकती है। मार्क्सवादी क्रांतिकारी रोजा लक्जमबर्ग ने लेनिन की लोकतंत्र–विरोधी नीति के संबंध में आपत्ति उठाते हुए कहा है कि कि इससे विशाल जनसमुदाय का अधिनायकवाद नहीं, विशाल जनसमुदाय पर अधिनायकवाद स्थापित हो जाता है।

लोकतंत्र की चौथी लहर : स्वस्थ जनतान्त्रिक मूल्यों की तलाश

लोकतन्त्र की चौथी लहर वर्तमान में अरब देशों में हुई लोकतांत्रिक क्रांति है। इस क्रांति की शुरूआत उत्तरी अफ्रीका स्थित अरब देश ट्यूनीशिया से हुई जिसकी लहर आगे चलकर मिस्र, लीबिया, सीरिया, यमन और सऊदी अरब तक महसूस की गई। ट्यूनीशिया में जनता के आकस्मिक, तीव्र व हिंसक विरोध के चलते एक महीने के अन्दर ही वहाँ जो सत्ता परिवर्तन हुआ है, उसे वास्तविक अर्थों में एक धर्मनिरपेक्ष लोकतांत्रिक क्रांति कहा जा सकता है। यह लोकतांत्रिक क्रांति, चमेली क्रांति के नाम से जानी जाती है। यह क्रांति न तो बाहरी किसी देश से समर्थित है और न ही मुस्लिम कठमुल्लावाद से प्रेरित है। अरब देशों में अभी तक जनतान्त्रिक सत्ता परिवर्तन का दूसरा प्रेरणा स्रोत बाह्य शक्तियों का हस्तक्षेप रहा है, लेकिन बाह्य शक्तियों द्वारा ऐसा हस्तक्षेप अपने निहित स्वार्थों की दृष्टि से चयनित आधार पर किया गया है। जैसा कि अमेरिका व अन्य पश्चिमी देशों ने इराक तथा अफगानिस्तान में प्रजातन्त्र की स्थापना के लिए जो हस्तक्षेप किया है उनका मूल उद्देश्य वहाँ लोकतन्त्र की स्थापना करना न होकर अपने हितों की रक्षा करना अधिक है। यदि अमरीका व पश्चिमी देश अरब विश्व में वास्तविक लोकतन्त्र की स्थापना के लिए चिन्तित होते तो अरब विश्व के तमाम गैर–लोकतान्त्रिक देशों को अपने रणनीतिक मित्रों के रूप में समर्थन प्रदान नहीं करते। स्वयं ट्यूनीशिया की तानाशाही, भ्रष्ट एवं गैर–लोकतान्त्रिक सरकार को यूरोपीय संघ तथा फ्रांस का व्यापक समर्थन प्राप्त था। इस परिप्रेक्ष्य में ट्यूनीशिया की लोकतान्त्रिक क्रांति वास्तविक अर्थों में लोकतन्त्र के वास्तविक सरोकारों से प्रेरित अपने ढंग की एक नई क्रान्तिकारी पहल है। अतः विश्व में प्रजातन्त्र से वंचित अथवा लोकतान्त्रिक घाटे से ग्रसित अरब देशों के लिए लोकतन्त्र की इस चौथी लहर के व्यापक निहितार्थ है।

ट्यूनीशिया औपचारिक रूप से यद्यपि अफ्रीका महाद्वीप में स्थित है, लेकिन इसकी शासन व्यवस्था का स्वरूप तथा लोकतान्त्रिक समस्यायें अरब देशों के ही समान थी। ट्यूनीशिया की इस धर्मनिरपेक्ष लोकतान्त्रिक पहल अरब देशों में फैलने से अरब विश्व की

राजनीति स्थिरता, उनके अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों तथा महत्वपूर्ण रणनीतिक सम्बन्धों को भी गहन रूप से प्रभावित करेगी। ट्यूनीशिया की लोकतान्त्रिक पहल ऐसे समय आई है, जब संचार क्रांति ने सम्पूर्ण विश्व को अन्तः क्रिया की दृष्टि से एक सूत्र में बाँध दिया है। इस्लामिक आतंकवाद से ग्रसित इस लोकतान्त्रिक पहल में धर्मनिरपेक्षता के स्वर भी निहित हैं।

ट्यूनीशिया से लोकतन्त्र की चौथी लहर की शुरूआत 17 दिसम्बर 2010 को उस समय हुई जब 26 वर्षीय एक शिक्षित बेरोजगार युवक मोहम्मद बौजिजी ने सरकारी उत्पीड़न से तंग आकर पश्चिमी शहर सिदी बौजेद में आत्मदाह कर लिया। इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप ट्यूनीशिया में जन आक्रोश भड़क उठा जिसने व्यापक समर्थन के कारण जन आन्दोलन का रूप ले लिया। लगभग एक माह तक चले इस आन्दोलन को ट्राज संगठनों, ट्रेड यूनियन तथा अन्य व्यावसायिक संगठनों का पर्याप्त व व्यापक समर्थन मिला। संचार साधनों के आधुनिक उपकरणों तथा इण्टरनेट, फेसबुक आदि से आन्दोलन को संगठनात्मक व जीवन्त आधार प्राप्त हुआ। राष्ट्रपति **जिन अल अबीदीन बेन अली** तानाशाही शासन के अधीन नियन्त्रित 1,80,000 सुरक्षा पुलिस ने घोषित आपातकाल के प्रावधानों का प्रयोग करते हुए इस जन आन्दोलन को कुचलने का प्रयास किया। परिणामस्वरूप इस जनआन्दोलन में लगभग 100 व्यक्तियों की मृत्यु हो गई। इस आन्दोलन का उल्लेखनीय तथ्य यह था कि सेना ने सरकार का साथ न देने का फैसला किया तथा आन्दोलनकारियों पर कार्यवाही करने से मना कर दिया।

लोकतान्त्रिक आन्दोलन के आरम्भिक दौर में राष्ट्रपति बेन अली ने दमन का सहारा लिया। उन्होंने आन्दोलनकारियों को –Hooded Holigans' की संज्ञा दी तथा उन्हें विदेशी भाड़े के ऐसे तत्व बताया जिन्होंने आतंकवाद व उग्रवाद के हाथों अपनी आत्मा को बेच दिया है। आश्चर्यजनक रूप से आन्दोलनकारियों को वैश्विक व क्षेत्रीय आधार पर कोई समर्थन प्राप्त नहीं हुआ। उल्टे लीबिया के राष्ट्रपति कर्नल गद्दाफी ने इस क्रान्ति को जल्दबाजी में उठाया गया कदम बताया। इस परिस्थिति में भी आन्दोलनकारियों ने साहस व जोश का परिचय दिया। अन्ततः राष्ट्रपति बेन अली ने 14 जनवरी, 2011 को ट्यूनीशिया से भाग कर सऊदी अरब में शरण प्राप्त की। इस लोकतान्त्रिक क्रान्ति के सम्बन्ध में एक फिलिस्तीनी पत्रकार अब्दुलबारी ने कहा है कि **"अरब राष्ट्र बीमार है। इन बीमार राष्ट्रों की हालत ऊँट की तरह है। ऊँट जब गुस्से में आता है, तो अपने**

उत्पीडिकों को दण्डित किए बिना शान्त नहीं होता। ऐसा लगता है कि इस तरह के ऊँट की लगाम अब छूट गई है।''

यह आश्चर्यजनक प्रतीत होता है कि वैश्वीकरण व संचार क्रान्ति के इस युग में सम्पूर्ण अरब विश्व व चीन प्रजातान्त्रिक प्रक्रिया से वंचित रह गये हैं। जहाँ तक अरब देशों का सम्बन्ध है, उनमें नाममात्र की प्रजातान्त्रिक व्यवस्थाओं की स्थापना तो हुई है, लेकिन वहाँ महिलाओं के साथ–साथ अन्य वर्गों के मानवाधिकारों व प्रजातान्त्रिक संस्थाओं की स्थिति संतोषजनक नहीं है। समीक्षकों द्वारा इसके दो कारण बताए जाते हैं। प्रथम कारण इस्लाम की मान्यताओं की दृढ़ता है, जिससे राजनीतिक नेतृत्व इस्लामिक समर्थन के नाम पर अपना राजनीतिक औचित्य प्राप्त करता है। इसका दूसरा प्रमुख कारण पश्चिमी राष्ट्रों द्वारा अपने सामरिक व आर्थिक हितों की रक्षा के लिए अधिनायकवादी व गैर–प्रजातान्त्रिक राज्यों का समर्थन प्रदान करना है। एक ध्रुवीय विश्व में यह समर्थन अत्यन्त महत्वपूर्ण है। अमरीका व पश्चिमी देशों ने अरब विश्व में तभी प्रजातन्त्र व मानवाधिकारों का समर्थन व स्थापना का प्रयास किया है जब ऐसा करना उनके व्यापक हित में हो। सौभाग्य से ट्यूनीशिया की क्रान्ति इस्लामिक समर्थन व पाश्चात्य देशों के समर्थन दोनों से मुक्त है। यह आन्दोलन स्वतः प्रेरित है तथा वैश्वीकरण क युग में संचार क्रान्ति व आर्थिक विषमताओं से उत्पन्न जागरूकता का स्वाभाविक परिणाम है। इसी कारण अरब विश्व के अन्य देशों में इसकी सफलता की उम्मीद लगाई जा सकती है। ट्यूनीशिया की इस लोकतांत्रिक क्रान्ति को प्रजातन्त्र की उत्पत्ति व विकास की दृष्टि से विश्व स्तर पर लोकतन्त्र की चौथी लहर की शुरूआत कहा जा सकता है।

अरब–अफ्रीकी देशों की जनक्रांति

ट्यूनीशिया में हुई सफल लोकतान्त्रिक क्रान्ति की देखा–देखी मिस्र की जनता ने भी विद्रोह किया और राष्ट्रपति होस्ने मुबारक को त्यागपत्र देने के लिए मजबूर कर दिया। उसके बाद मध्य–पूर्व के कई देशों में जन आंदोलन की आग फैल गई। परंतु सबसे बुरा हाल लीबिया का रहा जहाँ तेल का विशाल भण्डार है। लीबिया में पूरी तरह से गृह युद्ध छिड़ गया था। जहाँ एक तरफ लीबिया के तानाशाह कर्नल गद्दाफी अपनी ही जनता को गोलियों से भून रहे थे तो दूसरी ओर विद्रोही नेशनल ट्रांजिशन काउंसिल के तहत संगठित होकर गद्दाफी का विरोध कर रहे थे। नाटो की सेना भी विद्रोहियों का साथ दे रही थी। मध्य–पूर्व में जो जनक्रान्ति हो रही है उसकी जड़ में यह है कि वहाँ के शासकों ने वर्षों तक वहाँ की गरीब जनता का शोषण किया और तानाशाहों की तरह

राज करते रहे। वहां की 60 प्रतिशत आबादी ऐसे युवकों की है जिनकी उम्र 25 वर्ष से कम है। वे इंटरनेट पर हर क्षण देखते रहते है कि संसार के लोकतान्त्रिक देशों की जनता कितनी सुखी–संपन्न है। मिस्र के नोबेल पुरस्कार विजता मोहम्मद अल बरदेई ने इन युवाओं को प्रेरित किया कि देश शांतिपूर्ण तरीके से जनांदोलन करे और होस्ने मुबारक की सरकार को उखाड़ फेंके। अंत में उनकी अपील काम आई और मिस्र के राष्ट्रपति होस्ने मुबारक को जनता के जन आंदोलन के आगे घुटने टेक कर पद त्याग करना पड़ा। मध्य–पूर्व के देशों में एक तरह से 'पीढ़ियों का अंतर' है। पुरानी पीढ़ी के लोग तानाशाहों के आगे झुककर निरीह जिंदगी बिता रहे थे। परंतु नई पीढ़ी के युवक ऐसा करने को तैयार नहीं थे। इसी कारण यह जन आंदोलन तेजी से बढ़ा।

वर्तमान में अरब देश तानाशाही शासन और शासकों से जूझ रहे हैं। अरब देशों में रहने वाले लोग पिछले 30–40 सालों से सारा दमन और अपमान सहन कर रहे हैं। लगातार बेरोजगारी, ग्रामीण इलाकों में घोर गरीबी, खाद्य वस्तुओं की लगातार बढ़ती कीमतों, अपर्याप्त निवेश, भ्रष्टाचार और एक छद्म–लोकतांत्रिक तानाशाही राजनीतिक व्यवस्था ने लोगों, खासकर युवाओं को तानाशाह सरकारों के खिलाफ सड़कों पर उतर आने और अधिक लोकतांत्रिक अधिकारों की मांग करने पर विवश कर दिया। मौत तो होनी ही थी, चाहे भूख से या गोली से होती।

अरब देशों के दमनकारी शासन के खिलाफ वर्तमान लोकतांत्रिक क्रांति इस रूप में अनोखी है कि इसकी अगुवाई शिक्षित बेरोजगार यानी अरब युवाओं की एक नइ पीढ़ी कर रही है जो जनसंख्या के 60 फीसदी है। अरब जनसंख्या का यह भाग भ्रष्ट और तानाशाह शासन के दौरान जन्मा और पला–बढ़ा था। वे सैटेलाइट टेलीविजनों पर अपनी सीमा से बाहर उदार लोकतंत्रों के जीवन, आजादी और खुशहाली देखते हुए बड़े हुए। इसने उन्हें उनके शासकों के खिलाफ कर दिया। उन्होंने मॉल्टोव कॉकटेल को नहीं बल्कि फेसबुक और ट्विटर को माध्यम बनाया और अहिंसा का गांधी वादी तरीका अपनाया।

एक महीने से भी कम समय में अहिंसक प्रदर्शनों से एक तानाशाह को गद्दी से उतारकर इतिहास बनाने वाले ट्यूनीशियाई और मिस्री युवाओं ने अल–कायदा से प्रशिक्षण नहीं लिया। उन्हेंने मार्टिन लूथर किंग के संघर्ष पर किताबें पढ़ी और वर्ष 2000 में अहिंसक संघर्ष के द्वारा स्लोबोदान मिलोसेबिक को सत्ता से बेदखल करने वाले सर्बियाई

छात्राओं के 'ओटपोर क्रांति' से सीख ली। मिस्री तरीके की गांधीगिरी करते हुए उन्होंने सशस्त्र बलों से दोस्ती करली, हिंसक मुबारक को गद्दी छोड़ने पर मजबूर कर दिया।

अरब देशों में हुई लोकतान्त्रिक क्रांति ने हर किसी को चकित करदिया है। एक सवाल यह पूछा जा रहा है कि क्या इस क्षेत्र पर उसका प्रभाव इन देशों में रहने वाले लोगों के जीवन में कोई सुधार ला पाएगा ? यह काफी कुछ वर्तमान शासकों के बदले आने वाले हुकूमतों पर निर्भर करेगा। हालांकि मिस्र, सीरिया, लीबिया और ट्यूनीशिया तथा पूरे अरब में होने वाली क्रांतियां इस्लामी नहीं है, फिर भी पिछली हुकूमतों में दबाए गए कई कट्टर इस्लामी दलों के उभरने की आशंकाए मजबूत हो जाती है। इस पर भी सवाल उठाए जा रहे हैं कि यह जागरण अरब देशों के बाहर की दुनिया को कैसे प्रभावित करेगा ? बेशक अरब क्रांति का उन देशों की सीमाओं के बाहर भी प्रभाव पड़ेगा। अरब विश्व में बदलाव से दक्षिण एशिया खासकर भारत पर असर पड़ेगा। इसमें आठ में से दो देशों में मुस्लिम समुदाय की अधिकता है। दोनों इस्लामी देश कट्टरवाद के संकट से जूझ रहे हैं। विकासशील देशों की आर्थिक तथा राजनीति व्यवस्थाओं पर भी व्यापक प्रभाव पड़ेगा। इस क्षेत्र में दुनिया का दो–तिहाई तेल उत्पादन होता है। अगर तेल की कीमतें ऊँची बनी रहे तो उसका यूरोप और बाकी विश्व की मुद्रास्फीति पर उल्लेखनीय असर पड़ेगा।

यह पहली बार है कि अरब राष्ट्रवाद अपनी बुराइयों के लिए विदेशी ताकतों पर आरोप मढ़ते नहीं, बल्कि अपने समाज के निर्माण और सुधार के लिए खड़ा हुआ है। ट्यूनीशिया से उठी आवाज की प्रतिध्वनि पूरी अरब दुनिया में सुनाई दे रही है। ऐसा लगता है कि ट्यूनीशिया में आरंभ हुई लोकतान्त्रिक क्रान्ति 1980 के पोलैंड विद्रोह का अरबी संस्करण है। उसने कम्युनिष्ट तानाशाही को ध्वस्त कर दिया था। अगर ऐसा होता है तो नया अरब राष्ट्रवाद के भू–राजनीतिक परिदृश्य को पूरी तरह बदल देगा।

लोकतंत्र का पथरीला रास्ता

ट्यूनीशिया में जन–विद्रोह की आंधी के बाद अरब जगत के कई देशों में लोकतंत्र समर्थक आंदोलनों का सिलसिला चल पड़ा है। ट्यूनीशिया के राष्ट्रपति **बेन अली** और मिस्र के **होस्नी मुबारक** को गद्दी छोड़नी पड़ी। लीबिया के तानाशाह **कर्नक मोहम्मद गद्दाफी** को जहां विद्रोहियों के खिलाफ जंग के मैदान में अपनी जान गवानी पड़ी तथा यमन के राष्ट्रपति का भी अपना पद छोड़ना पड़ा। लोकतन्त्र की यह चौथी लहर

बहरीन, सीरिया, मोरक्कों, कतर, सऊदी अरब तथा तुर्की आदि को भी अपने आगोश में ले चुकी है। इससे ईरान भी अछूता नहीं रहा है, जहां विपक्षी दल नए जोश के साथ फिर जन आंदोलन की मुद्रा में आ गए हैं। लेकिन, क्या अरब जगत में लोकतंत्र का आगमन और उसका स्थायित्व आसान है ? यह सवाल इसलिए भी पेचीदा है, क्योंकि अधिकांश अरब देशों का अतीत कबीलाई संस्कृति का रहा है। बहुमूल्य तेल–संपदा की खोज के बाद भले ही वे अमीर बन गए, पर कबीला संस्कृति की गहरी जड़े अभी भी उन्हें अधिनायकवादी रास्ते से मोड़कर लोकतंत्र की पगडंडियों की ओर ले जाने में भारी अड़चने डाल रही हैं। 1990 के दशक में चली लोकतन्त्र की तीसरी लहर ने पूर्वी यूरोप और विश्व के अन्य भागों में सकारात्मक नतीजे दिखाए, पर अरब देशों की जनता की दशकों की चाहत के बावजूद उसका सपना पूरा नहीं हुआ। ऐसा क्या कारण रहा कि अरब जगत में लोकतन्त्र इस लहर में नहीं आ पाया था ?

कुछ लोग सभ्यता के टकराव के साथ इसका जवाब ढूंढते है। अरब जगत में लोकतंत्रीकरण विषय के अजरायली विशेष एलेक्जेंडर बिलाइध का मानना है, 'अरब देशों की लोकतंत्र की धारण हमसे (पश्चिमी दुनिया से) बेहद भिन्न है। हम राज्य और धर्म को अलग–अलग खांचों में देखते हैं, जबकि इस्लाम में अग्रणी धार्मिक नेता ही युद्ध एवं राजनीति के मैदानों में भी होता है।' यह बहुत संतुष्टकारी व्याख्या भले ही न हो, पर यह भी हकीकत है कि मुखर और उग्रपंथी इस्लामी तत्वों ने हमेशा लोकतंत्र का खुलकर विरोध किया है। **'द स्पीरिट ऑफ अरब डेमोक्रेसी'** पुस्तक के लेखक लैरी डायमंड की इससे भिन्न राय है, 'अरब देशों में लोकतंत्र का डंका भले ही न बजा हो पर कुछ मुस्लिम देशों ने उसे अपनाया है। आज दुनिया के आठ मुस्लिम–बाहुल्य देशों में लोकतान्त्रिक व्यवस्था है जिनमें इंडोनेशिया, तुर्की, बांग्लादेश, मालदीव और पाकिस्तान भी शामिल हैं।

यह व्याख्या तर्कसंगत नहीं है कि अलोकतांत्रिक संस्कृति अरब देशों में लोकतन्त्र की धीमी गति के लिए जिम्मेदार है। अरब जगत में तमाम तानाशाही सरकारों के बावजूद जनमत सर्वेक्षण लगातार दर्शाते रहे हैं कि अरब नागरिक लोकतन्त्र को बेहतरीन राजनीतिक व्यवस्था मानते है। पिछले कुछ महीनों के दौरान लोकतन्त्र–समर्थक प्रदर्शन इस बात के जीते–जागते उदाहरण हैं कि अरब जनता तानाशाही सरकारों के अधीन नहीं, बल्कि दुनिया के अन्य लोकतान्त्रिक मुल्कों की जनता की तरह रहना चाहती है। कुछ लोग प्रथम विश्व युद्ध के विजेता देशों को मध्य–पूर्व के निराशाजनक हालात के

लिए जिम्मेदार मानते हैं, जिन्होंने मध्यपूर्व में आंतरिक कलह और मतभेद पैदा किए तथा तानाशाही सरकारों को समर्थन दिया। नए अरब देशों के गठन की लकीरें अतर्कसंगत थीं। मध्य–पूर्व के देशों के तानाशाहों ने बड़े पैमाने पर अपना धन पश्चिमी देशों की बैंकों में जमा किया या कंपनियों में निवेश किया है। जिसने तानाशाही सरकारों और पश्चिमी सरकारों के बीच नापाक गठजोड़ को मतबूत किया। 'आरियंटलिज्म' के मशहूर लेखक **'एडवर्ड सईद'** भी मानते हैं कि अरब देशों में लोकतन्त्र के अभाव का आंशिक कारण पश्चिमी सरकारों एवं अरब देशों की तानाशाह सरकारों के बीच गठजोड़ है।

अरब देशों के राजनीतिक अभिजात वर्ग के पास इतना अकूत धन एकत्र हो गया है कि उसने अपने समर्थकों की वफादारी खरीदकर लोकतन्त्र की धारा में जहर घोल दिया है। अगर अरब देशों में लोकतन्त्र का सवेरा लाना है तो उसकी जनता को ही ठोस राजनीतिक सुधारों के लिए तानाशाहों पर दबाव डालने या उनके न मानने पर उनके खिलाफ उठ खड़ा होना होगा। स्वतंत्र एवं निष्पक्ष चुनाव के लिए कानून बनवाने होंगे, संसद को प्रतिनिधियात्मक बनवाना होगा, सरकार पर निगरानी के लिए सांसदों को अधिकार दिलाने होंगे और सरकार के अधिकारों के नियंत्रण एवं संतुलन के उपाय करने होंगे। पश्चिमी देशों को भी न्यस्त स्वार्थी रवैया छोड़ना होगा, भले ही यह तात्कालिक लाभ की दृष्टि से कितना ही प्रतिकूल क्यों न हो। दूसरी बात यह है कि किसी भी देश का क्षेत्र में लोकतंत्र के पनपने, उसके विकास और स्थायित्व में समय लगता है। जनता में लोकतंत्र के प्रति राजनीतिक चेतना लाना, स्वतंत्र मीडिया का विकास, स्वतंत्र न्यायपालिका की स्थापना और कुशल राजनीतिक नेतृत्व रातोंरात मुमकिन नहीं है। स्वयं अमेरिकी इतिहास पर नजर डालें तो स्पष्ट होता है कि वहाँ लोकतन्त्र आने में अनेक साल लग गए। फ्रांस में भी लोकतन्त्र एक झटके में नहीं आया। 59 साल की ऊहापोह की स्थिति के बाद ही फ्रांस में वास्तविक लोकतन्त्र आ पाया।

इसलिए, इराक हो या अफगानिस्तान, ट्यूनीशिया हो या अल्जीरिया, लीबिया हो या यमन, बहरीन हो या मिस्र, सीरिया हो या सऊदी अरब, वहां लोकतन्त्र के आगमन एवं विकास की तुरंत आशा करना शुभेच्छा जरूर है, पर कटु हकीकतों को नजरअंदाज करना मूर्खता है। ये देश लंबे समय से कबीलाई नेताओं और रूस एवं फ्रांस की तरह तानाशाहों के शासन में रहे हैं।

हाँ, आधुनिक विज्ञान एवं टेक्नोलॉजी के युग में जनता में जागरूकता तेजी से बढ़ रही है और इंटरनेट क्रांति ने पूरी दुनिया में लोगों को एक–दूसरे के नजदीक ला दिया है। अरब देश भी इससे अछूत नहीं है और वहां की जनता का विशिष्ट मिजाज होता है, जिसके मुताबिक ही लोकतांत्रिक पहिया आगे बढ़ सकता है। वह दूसरों की मर्जी या कामना से नहीं, बल्कि अपने पथरीला रास्ते की बाधएं पार कर ही आगे बढ़ेगा।

लोकतंत्र और लीबिया

ट्यूनीशिया और मिस्र के बाद लोकतन्त्र की चौथी लहर का प्रभाव लीबिया पर पड़ा। लीबिया में भी जनक्रांति सफल हो गई। विद्रोहियों ने राजधानी त्रिपोली सहित संपूर्ण लीबिया पर कब्जा जमा लिया है। हालांकि सेना ने इस विद्रोह को कुचलने की काफी कोशिश की, मगर उसे नाकामी हाथ लगी। लबियाई सेनाओं की गोलीबारी के जवाब में अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस और नाटो आदि देशों ने भी आम लागों की सुरक्षा के लिए गोले दागे। इससे वहां की सेना का साहस चुक गया। लीबिया के लोगों का गुस्सा फूटा तो उसके पीछे उनमें अपने राजनीतिक अधिकारों की वापसी और जनतंत्र की प्रबल आकांक्षा काम कर रही थी। मुहम्मद गद्दाफी पिछले करीब बयालीस साल से वहां की सत्ता पर काबिज है। सैन्य तख्ता पलट के जरिए उन्होंने शासन की बागडोर हासिल की थी और लोकतंत्र में उनका शुरू से ही विश्वास नहीं रहा। वे मानते रहे कि लोकतंत्र में एक बहुमत प्राप्त दल अपनी मनमानी करता है। इसी तर्क पर उन्होंने लोगों के राजनीतिक अधिकारों को समाप्त कर दिया और एक तानाशाह की तरह शासन करते रहे। इसके चलते न सिर्फ वहां के अधिकतर लोगों बल्कि दुनिया के अनेक देशों का भी अपना दुश्मन बना लिया। गद्दाफी के पहले तक वहां के तेल उत्पादन पर विदेशी कंपनियों का कब्जा था। गद्दाफी ने उन्हें बाहर का रास्ता दिखाया और तेल कारोबार अपने हाथों में ले लिया। फिर लीबिया के तेल भण्डारों का भरपूर दोहन किया। पैसे के बल पर कुछ अफ्रीकी देशों को अपने पक्ष में बनाए रखा, ताकि बाहरी देशों का विरोध अधिक प्रभावी साबित न हो।

अब पश्चिमी देश लीबिया की जनता के समर्थन में खुलकर खड़े हैं तो उसकी वजहें भी साफ हैं। ये देश भले ही दुनिया भर में लोकतन्त्र की पैरवी करते रहे हैं। मगर हकीकत है कि यही अनेक अरब देशों में तानाशाही के पोषक रहे हैं। दरअसल, उनकी नजर पश्चिमी एशिया और उत्तरी अफ्रीका के तेल भंडारों और दूसरे प्राकृतिक संसाधनों पर रही है। उन्हें सिर्फ इस बात से मतलब रहा है कि इन संसाधनों का अधिक से

अधिक लाभ मिलता रहे। गद्दाफी की सत्ता समाप्ति के बाद उन्हें अपने पक्ष में लाभ नजर आ रहा है। ऐसे में गद्दाफी की मृत्यु की बाद लीबिया के भविष्य को लेकर स्वाभाविक ही सवाल उठने लगे हैं। यह पूछा जाने लगा है कि क्या वहां की सुरक्षा व्यवस्था और लोकतांत्रिक ढांचे की बुनियाद सही तरीके से रखी जा सकेगी ? गद्दाफी का शासन भय के जरिए कायम रहा। सेना एक ताकतवर संस्था के रूप में काम करती रही। उसका किस तरह हस्तांतरण होगा, यह एक जटिल मुद्दा है। हालांकि नाटों देशों ने विद्रोहियों और उनके संगठन 'नेशनल ट्रांजिशन काउंसिल' में काफी भरोसा जताया है, मगर उसकी तरफ से अभी तक लोकतन्त्र का कोई स्पष्ट नक्शा नहीं आ पाया है। ऐसे में अगर पश्चिमी देशों की देख–रेख में वहां लोकतन्त्र की बुनियाद रखी जाती है तो उसके वहां के लोगों की आकांक्षाओं पर खरा उतरने को लकर आशंका बनी रहेगी। वहां के कबीलाई समाज में विभाजन के खतरे भी बने रहेंगे ऐसे में लीबियाई विद्रोही नेताओं की परीक्षा इस बात से होनी है कि लोकतांत्रिक अधिकार मुहैया कराने के साथ–साथ वे किस तरह सुरक्षा और सभी समुदायों के बीच अमन का माहौल तैयार करते हैं।

मिस्र और लीबिया में हुए जन आंदोलनों के कारण अरब जगत में शुरू हुई बदलाव की क्रांति की चर्चा संयुक्त राष्ट्र के वार्षिक सम्मेलन (सितम्बर 2011) में भी हुई और इन देशों के प्रतिनिधियों ने भविष्य की रूपरेखा का जिक्र किया। लीबिया की नेशनल ट्रांजिशनल काउंसिल (एन.टी.सी.) के प्रधानमंत्री महमूदजिबरील ने संयुक्त राष्ट्र महासभा को बताया कि कैसे मुअम्मर गद्दाफी को सत्ता से हटाने के बाद उनके देश का पुनर्जन्म हुआ। उन्होंने कहा, ''मैं दुनिया को बताने के लिए आज आपके सामने खड़ा हूँ कि नया लीबिया आकार ले रहा है। लीबिया आगे की ओर देख रहा है और उसके पास अपना पुनर्विकास करने का खाका है। लीबिया अपने घावों को भरना चाहता है और पूरी दुनिया तक पहुँचने के लिए अपने दर्द पर विजय हासिल करना चाहता है। वह अपने ही इतिहास में सुधार करने के लिए अपना पुनर्निमाण करना चाहता है। जिबरील ने गद्दाफी की ओर से 2009 में संयुक्त राष्ट्र महासभा को सम्बोधित करते हुए उस भाषण की याद दिलाई जिसका अंत लीबियाई तानाशाह की ओर से संयुक्त राष्ट्र के चार्टर की प्रति को फाड़ने के साथ हुआ था। जिबरील ने इसे 'कारूणिक और नाटकीय कदम' बताया। इसके अलावा मिस्र के विदेश मंत्री मोहम्मद कामिल अम्र ने संयुक्त राष्ट्र महासभा को सम्बोधित करते हुए कहा कि उनके देश ने हुस्नी मुबारक के हटाने के बाद एक नये युग में प्रवेश किया है।

अरब वसंत और तुर्की

इक्कीसवीं सदी (21) के विश्व के राजनीतिक मानचित्र के निर्माण और अनेक तरह के टकरावों का केन्द्र इस्लामी दुनिया बनती जा रही है। शीत युद्ध के उपरांत पूरी इस्लामी दुनिया में उग्र राजनीतिक इस्लाम उफान पर था और 9/11 के बाद अमेरिका के आतंकवाद के खिलाफ वैश्विक युद्ध में इस्लामी देश ही निशाने पर रहे। लेकिन हाल ही में इस्लामी दुनिया में कुछ ऐसे रूझान पनपने शुरू हुए है जिनमें कुछ बुनियादी और सकारात्मक परिवर्तनों के तत्व निहित है। अरब जगत के हाल के ही जन विद्रोहियों ने संदेश दिया कि अब तो कुछ बदलना ही चाहिए, भले ही अरब वसंत के पास अभी बदलाव की स्पष्ट रूपरेखा नहीं है और न ही यह कोई संगठित राजनीतिक ताकत है।

इन रूझानों के बीच हाल ही में तुर्की के चुनाव परिणाम और अनेक उग्र इस्लामी धाराओं में कुछ उदार तत्वों के उदय से परिवर्तन के एक नक्शे के बनने की छोटी सी आशा दिखती है। तुर्की के चुनावों में इस्लामी पार्टी ने लगातार तीसरी बार चुनाव जीते। 2002 से अब तक के अपने शासन में तुर्की ने यह साबित कर दिया कि इस्लाम और लोकतंत्र परस्पर विरोधी नहीं है और लोकतंत्र को इस्लामी मूल्यों और संस्कृति के अनुरूप ढाला जा सकता है। आज यह धारणा पनप रही है कि तुर्की इस्लामी दुनिया के लिए एक मॉडल हो सकता है जिसमें इस्लाम और लोकतंत्र एक साथ फल–फूल सकते हैं। तुर्की में पहले विश्व युद्ध के बाद कमाल अतातुर्क ने जिस धर्मनिरपेक्ष गणतंत्र की नींव रखी थी वह आज इस्लामी पार्टी के सत्ता में आने के बाद भी फल–फूल रहा है। तुर्की में कई बार सेना ने इस्लामी सत्ता का उदय नहीं होने दिया और निर्वाचित सरकारों को बर्खास्त किया लेकिन आज तुर्की में लोकतंत्र और इस्लाम का इस तरह का समावेश हो चुका है कि इस्लामी सत्ता के उदय का डर खत्म हो गया है। तुर्की के सफल प्रयोग ने यह साबित कर दिया कि इस्लामी सत्ता का पश्चिम विरोधी होना अनिवार्य नहीं है और अब पश्चिम को यह साबित करना होगा कि हर इस्लामी लोकतंत्र का पश्चिम परस्त होना भी अनिवार्य नहीं है।

इस संदर्भ में हमें इस बात को नहीं भूलना चाहिए कि हर देश की अपनी संस्कृति है, अपनी एक पहचान और यही उसकी किसी भी राजनीतिक व्यवस्था के आधार हो सकते हैं। लोकतंत्र का निर्यात संभव नहीं है और यह न तो अफगानिस्तान में सफल हुआ, न इराक में और न ही लीबिया में सफल होने जा रहा है। इसके विपरीत ईरान और सूडान जेसे देशों में इस्लामी सत्ता का जुनून भी कम हो रहा है और इक्कीसवीं सदी

के साथ जीने के बदलाव के स्वर उठ रहे हैं। इस्लाम में कट्टरता की बजाय उदारता की धारा पैदा हो रही है। मिस्र में इस्लामी ब्रदरहुड में नरम धारा पनप रही है। लेबनान में हिजबुल्लाह ने अस्सी के दशक में आत्मघाती हमलों वाले आतंकवाद की शुरूआत की थी लेकिन आज यह एक राजनीतिक दल है और उग्रवादी तत्व हासिए पर चले गए हैं।

तुर्की एक मॉडल पेश करता है और अगर मिस्र में भी इस्लाम और लोकतंत्र का समावेश हो पाता है तो ये दोनों पूरी इस्लामी दुनिया पर जबरदस्त असर डाल सकते हैं। इस परिवर्तन का अग्रिम दस्ता युवा वर्ग है जिसकी उम्र तीस साल से कम है और जो इस्लामी जगत की आबादी का सत्तर प्रतिशत है। यही युवा अन्याय से लड़ने के लिए उग्रवाद की ओर खिंचा और आज इसी युवा के सपने कुछ और हैं।

इस्लामी दुनिया और इसके तेल संसाधनों पर नियंत्रण के लिए अमेरिका तमाम तरह की तानाशाहियों को समर्थन देता रहा है और इस्लामी उग्रवाद के उदय के बाद यह समर्थन गहरा होता चला गया। आज की इस्लामी दुनिया में इराक, अफगानिस्तान और अब लीबिया में अमेरिका के सैनिक अभियान चल रहे हैं और कोई भी ये उम्मीद नहीं करता कि इनके परिणाम से कोई लोकतंत्र उभरेगा। फिर ईरान है जहां एक घोर पश्चिम विरोधी इस्लामी सत्ता है और बार–बार अमेरिकी सैनिक आक्रमण की सम्भावना बनी रहती है। पर सच्चाई यह भी है कि इस पूरे क्षेत्र में ईरान एकमात्र ऐसा देश है जिसमें सबसे अधिक बार चुनाव हुए हैं और एक अल्जीरिया है जहां एक दशक पहले इस्लामी पार्टी के सत्ता में आने की सम्भावना के कारण सेना ने चुनाव रद्द कर दिये और सत्ता संभाल ली और तब से अब तक यह गृहयुद्ध में फंसा है।

इस्लामी दुनिया में नई सोच पनप रही है। नई पीढ़ी सामाजिक और राजनीतिक जीवन के केन्द्र में आ रही है। जिसकी सोच के केन्द्र में धार्मिक कट्टरपंथ नहीं है बल्कि स्वतंत्रता और आधुनिकता है।

सऊदी अरब और लोकतंत्र

ट्यूनीशिया से प्रारम्भ हुई लोकतंत्र की चौथी लहर ने सऊदी अरब में भी प्रभाव डाला। सऊदी अरब जो कि अपनी राजशाही सत्ता के लिए जाना जाता है इस लहर के प्रभाव से नहीं बच सका। इस लहर से प्रभावित होकर वहाँ के शासक अब्दुल्ला बिन अल–अजीज ने यह घोषणा कर सबको आश्चर्यचकित कर दिया है कि वर्ष 2015 में निकाय चुनाव में मुल्क की औरतें भी शिरकत कर सकेंगीं। शाह ने यह भी घोषणा की

कि महिलाएं वोट ही नहीं डाल सकेंगीं, बल्कि शूरा में भी उन्हें मतदान का हक होगा। सऊदी अरब की औरतों को यह अधिकार विश्व में चल रही लोकतंत्र की लहर के संदर्भ में ही प्राप्त हुआ है। यह अधिकार देकर सऊदी शाह अपनी सत्ता को बचाए रखना चाहते हैं लेकिन यह देखना होगा कि यह कब तक बची रहती है। वर्तमान में विश्व में हर कहीं लोकतान्त्रिक सरकारों की माँग हो रही है। अब विश्व से निरंकुश और राजशाही सत्ता के दिन लद गये हैं। लोकतंत्र केवल शासन पद्धति तक ही सीमित नहीं रहा बल्कि यह एक जीवन पद्धति बन गया है। प्रसिद्ध राजनीतिशास्त्री वी.ए. स्मिथ ने **लोकतंत्र को ''जीवन शैली''** के रूप में परिभाषित किया है। अतः विश्व में भी लोकतंत्र धीरे–धीरे आ रहा है। जिन क्षेत्रों में यह अभी तक किसी कारण से नहीं पहुँच सका वहाँ आज पहुँच रहा है।

अरब देशों में प्रजातान्त्रिक सफलता की स्थिति

लन्दन स्थित शोध संस्थान Economist Intelligence Unit ने वर्ष 2010 में विश्व के 167 देशों का अध्ययन कर वहाँ प्रजातन्त्र की सफलता का Index तैयार किया है। इस Index के अनुसार अरब देशों की प्रजातान्त्रिक सफता की रैकिंग अत्यन्त पीछे है। लेबनान, फिलिस्तीनी क्षेत्र व इराक को छोड़कर अन्य राज्य प्रजातान्त्रिक Index में अत्यन्त पीछे है। इस Index को निम्नलिखित सूची में प्रस्तुत किया गया है–

क्र.	**देश का नाम**	**प्रजातान्त्रिक रैंक**
1.	लेबनान	86
2.	फिलिस्तीनी क्षेत्र	93
3.	ईराक	111
4.	कुवैत	114
5.	मैरीटानिया	115
6.	मोरक्को	116
7.	जॉर्डन	117
8.	बहरीन	122
9.	अल्जीरिया	125
10.	कोमोरोज	127
11.	कतर	137
12.	मिस्र	138

13.	ओमान	143
14.	ट्यूनीशिया	144
15.	यमन	146
16.	यूनाइटेड अरब अमीरात	148
17.	सूडान	151
18.	सीरिया	153
19.	जिबूती	154
20.	लीबिया	158
21.	सऊदी अरब	160
22.	सोमालिया	नही प्राप्त

प्रजातान्त्रिक रैंक में पीछे चल रहे सऊदी अरब की एक हकीकत यह भी है कि महिलाओं को अब भी वहाँ वाहन चलने की इजाजत नहीं मिली है। हालांकि कुछ महिलाओं ने मुखर होकर इसका विरोध भी किया है। यू–ट्यूब और फेसबुक पर कार चलाती महिलाओं की तस्वीरें और वीडियो डालना, इसी विरोध का एक हिस्सा है। सऊदी अरब में पुरूष के संरक्षक होने का सिद्धान्त अभी तक माना जाता है। यह सिद्धान्त औरतों को वाहन चलाने की इजाजत नहीं देता। हालांकि सऊदी सरकार ने वर्ष 2009 में ही संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार आयोग से यह वायदा किया था कि इस व्यवस्था को खत्म कर दिया जाएगा। तभी तो ज्यादातर महिलाओं को इस बात का संशय है कि क्या शाह अब्दुल्ला का वायदा सऊदी अरब की महिलाओं के लिए हकीकत बनेगा भी या नहीं। निजी तौर पर मेरा अनुमान है कि इस बार कुछ अलग देखने को मिल सकता है। शाह अब 87 साल के हो गए हैं उनका स्वास्थ्य अब पहले जैसा नहीं है। शायद अब उन्हें अपनी परम्परा और विरासत की चिन्ता हो रही है। वह स्वयं की तुलना शाह फैजल से करते रहे है। 1960 के दशक में शाह फैजल ने ही लड़कियों के लिए स्कूली शिक्षा को अनिवार्य किया था। अब ऐसे में शाह अब्दुल्ला अपनी जनता के लिए यही विरासत छोड़ सकते हैं कि सऊदी अरब की महिलाओं को कुछ बुनियादी अधिकार और स्वतन्त्रता मिल जाए। हालांकि इस सुख को दुनिया के दूसरे मल्को की औरतें कई वर्षों से भोग रही है।

महिला अधिकारों के मामले में शाह अब्दुल्ला का रिकार्ड बहुत अच्छा नहीं है। लेकिन यह भी सच है कि उन्होंने महिलाओं को शिक्षा के क्षेत्र में प्रोत्साहित किया और

उन्हें काम करने के मौके दिलवाए। आज सऊदी अरब की महिलाएं शिक्षक, डॉक्टर और इंजीनियर बन सकती है। यही नहीं, महिला उद्यमियों के लिए शाह ने विशेष प्रावधान भी किए है, ताकि उन्हें नए कारोबार के पंजीकरण की सुविधा के लिए पुरूष एजेंटों की जरूरत नहीं पड़े।

म्यांमार और लोकतंत्र

लोकतन्त्र की चौथी लहर का प्रभाव केवल अरब जगत तक ही सीमित नहीं रहा बल्कि इसने म्यांमार ओर चीन को भी प्रभावित किया है। म्यांमार में 1962 से चले आ रहे सैन्य शासन को समाप्त करके नवम्बर 2011 में चुनाव कराए गए और वहां अब एक चुनी हुई जनतांत्रिक सरकार ने कमान संभाल ली है। म्यांमार के सैनिक शासन में प्रधानमंत्री रह चुके थेन स्येन राष्ट्रपति बनाए गए हैं। हालांकि इस नागरिक सरकार में पर्दे के पीछे सैनिक शासक सीनियर जनरल थान श्वे का हाथ है जिन्होंने चुनाव का नाटक खेला और खुद पर्दे के पीछे से इस सरकार को चलाने की ठान ली है। करीब दो दशक पहले हुए वहां जनतांत्रिक चुनाव के नतीजों को दरकिनार करते हुए विजयी प्रत्याशी आंग सान सू की को नजरबंद कर दिया गया लेकिन पिछले साल लोकतन्त्र की चौथी लहर चलने तथा अन्तर्राष्ट्रीय जनमत के दबाव वश चुनाव से पहले उन्हें रिहा कर दिया गया था।

सूकी की पार्टी नेशनल लीग फॉर डेमोक्रेसी ने इन चुनावों में शामिल होने से मना कर दिया था। सूकी की पार्टी ने संसद के बहिष्कार का निर्णय वापस लेकर निचले सदन के लिए अप्रैल 2012 में हुए चुनाव में भाग लिया जिसमें सूकी समेत 43 समर्थक उनकी पार्टी से संसद के लिए निर्वाचित किए गए। हालांकि सूकी ने पहले संविधान के वर्तमान स्वरूप के तहत संसद की शपथ लेने से इन्कार कर दिया था क्योंकि इस शपथ के स्वरूप में संविधान की रक्षा की शपथ लेनी थी जबकि यह संविधान सैन्य शासक के समय बनाया गया किन्तु बाद में उन्होंने अपना विरोध वापस ले लिया है और अब वे संसद की सदस्य बनकर म्यांमार में लोकतन्त्र को मजबूत करने की दिशा में काम करेगी। म्यांमार भारत और बाकी एशियाई देशों को जोड़ने में एक महत्वपूर्ण कड़ी साबित होगा। सरकार वहाँ चाहे जैसी भी हो, लेकिन म्यांमार में शांति और स्थिरता बनी रहे तो भविष्य में वह दक्षिण एशिया और दक्षिण–पूर्व एशिया के बीच संपर्क के पुल की भूमिका निभाएगा। म्यांमार की जो भू–सामरिक स्थिति है वह भारत की सामरिक और आर्थिक रिश्तों के लिए काफी महत्व रखती है। इसलिए भारत की यह कोशिश हागी कि म्यांमार की नई कथित नागरिक सरकार के साथ रिश्ते प्रगाढ़ बनाए जाएं ताकि अपने उत्तर पूर्वी

राज्यों में शांति, स्थिरता और तेज आर्थिक विकास की खातिर नई क्षेत्रीय योजनाओं को लागू करने में आसानी हो।

म्यांमार में उम्मीद की नई किरण

म्यांमार में पूरे 22 वर्षों के बाद लोकतांत्रिक चुनावी प्रक्रिया का हिस्सा बनी **'द लेडी' यॉग आंग सान सू की** ने 2012 में हुए उप चुनावों में अपनी पार्टी की भारी जीत के बाद घोषणा की कि यह म्यांमार में नए युग की शुरूआत है। फौजी बूट और संगीनों के साये में कराहते म्यांमार की जनता को इससे मानो ऑक्सीजन मिल गया हो। ***नेशनल लीग फॉर डेमोक्रेसी*** द्वारा 43 सीटों पर विजय से आजादी की जो बयार चली है वह 2015 में होने वाले आम चुनाव में आंधी का रूप ले सकती है। स्वयं आंग सान सूकी की जीत म्यांमार की जनता के स्वाधीनता प्रेम की प्रबल भावना का संकेत है। इन परिणामों से इतना कहा जा सकता है कि ये म्यांमार में किस्तों में आ रहें लोकतंत्र को ठोस आधार देने में मददगार बनेंगे।

म्यांमार में सैन्य शासकों द्वारा लोकतंत्र को कुचलने का खेल लंबे समय से चल रहा है, इसलिए वे यह कभी भी नहीं चाहेंगे कि लोकतंत्रवादियों के हाथ में सत्ता पहुँचे। लेकिन विश्व राजनीति के कुछ विचारकों का मानना है कि म्यांमार में लोकतन्त्र भले ही किस्तों में आ रहा हो, लेकिन इस प्रक्रिया को अब वापस नहीं मोड़ा जा सकता। देश बड़ी तेजी से निराशा की स्थिति से निकलकर बहुमुख संभावनाओं की ओर अग्रसर हो रहा है। यद्यपि नया संविधान सेना की मौजूदगी के महत्व और इसकी खामियों की ओर इशारा करता है लेकिन बदलाव की तेज गति है इसलिए उसे रोकना मुश्किल होगा। लेकिन इसके साथ ही जरूरी यह होगा कि बदलाव अस्थिर करने वाला न हो।

म्यांमार में 2008 में नए संविधान के आने से और कुछ वैश्विक ताकतों के दबाव के कारण कुछ ऐसे बदलाव हुए जो लोकतंत्र के लिए हितकर माने जएंगे। इनमें से पहला यह रहा कि म्यांमार की पहली असैनिक या सही अर्थों में अर्द्ध सैनिक सरकार ने एनएलडी पर लगा प्रतिबंध हटा लिया और उसकी मुखिया सू की को देश के भीतर घूमन–फिरने की इजाजत दे दी। शायद इस दौर में नए शासक वर्ग ने इस पर भी विचार किया कि पिछले दशकों में सैनिक शासकों ने अभिव्यक्ति की आजादी को जिस तरह से कुचला है उससे निर्मित प्रतिरोधक तानेबाने से कहा अरब जैसे जनाक्रोशों का सामना न करना पड़ जाए। इसका प्रभाव यह पड़ा कि अमेरिका और यूरोपीय संघ, जो

अब तक म्यांमार को प्रतिबंध की जद में रखने के लिए कोई अवसर नहीं छोड़ना चाहते थे, उसे करीब आने लगे। पिछले वर्ष जेसे ही एनएलडी के प्रति शासक वर्ग का रवैया उदार हुआ वैसे ही अमेरिका ने सहायता सम्बन्धी प्रतिबन्ध हटा लिए। इसके बाद अमेरिकी विदेश मंत्री ने नेपिदा पहुँचकर अमेरिका–म्यांमार सम्बन्धों में 'नए अध्याय' की शुरूआत की घोषणा की, जिसे म्यांमार के राष्ट्रपति थिन सेन ने भी मील का पत्थर बताया। अमेरिका–म्यांमार निकटता ने म्यांमार पर चीन के प्रभाव को भी कमजोर किया।

फिलहाल 664 सदस्यों वाली संसद में यदि सू की पार्टी एनएलडी 43 सीटें पाई है, तो इससे कोई बड़ा उलटफेर होने की उम्मीद नहीं है। ये परिणाम म्यांमार की जनता में एक नया विश्वास अवश्य पैदा करेंगे जो यह मान चुकी थी कि लोकतंत्र की अंतिम सॉसे भी थम चुकी हैं।

लोकतंत्र की चौथी लहर और चीन

अरब–अफ्रीकी देशों में तानाशाही सत्ता के खिलाफ उठे तूफान का असर चीन में भी देखा गया। जहाँ रजनीतिक और लोकतांत्रिक सुधारों को लेकर लम्बे समय से जनाक्रोश सक्रियता के साथ उपस्थित रहा है। हालांकि वहाँ जनाक्रोश की सक्रियता के प्रबन्ध का तरीका बहुत ही लोमहर्षक और बर्बर है। परिणामतः ऐसे हजारों लोग चीन की जेलों में दमन और उत्पीड़न का अंतहीन दंश झेलने को मजबूर हैं। चीन में ऐसा राष्ट्रीय कानून है जिसके अंतर्गत किसी भी नागरिक को बिना मुकद्मा चलाये जेल में रखने का अधिकार सत्ता को प्राप्त है और इसके लिए नियत तीन साल की अवधि कभी समाप्त नहीं होती है। हाल में एक लोकतांत्रिक सेनानी को शांति का नोबेल पुरस्कार दिया गया था। उस पर चीन की त्योरियां चढ़ी और उसने नोबेल समिति को धमकाया भी। पर जब समिति ने इसकी परवाह नहीं की तो चीन अपने समर्थक दर्जनों देशों को नोबेल पुरस्कार समारोह का बहिष्कार करने के लिए उकसाया और सफलता भी पाई।

ट्यूनीशिया के बाद तानाशाही और भ्रष्ट सत्ता के खिलाफ लोकतंत्र की चौथी लहर का आंदोलन जब मिस्र में फैला तो चीनी कम्युनिस्ट तानाशाही को आशंका हुई कि कहीं लोकतंत्र का आंदोलन उनके देश में भी शुरू न हो जाए। कारण आज लोकतांत्रिक आंदोलन को सूचना क्रांति और सोशल साइटों ने आसान और शक्तिशाली माध्यम उपलब्ध कराया है। चीन में सोशल ब्लॉगिंग का नेटवर्क बहुत मजबूत है। क्योंकि वहाँ प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया सरकारी नियंत्रण में है और कम्युनिस्ट तानाशाही के

समर्थन में ही खबर देता है। वेब सोशल नेटवर्किंग के माध्यम से ही दुनिया को खबर मिलती है कि चीन में आखिर क्या हो रहा है और किसी प्रकार लोकतंत्र समर्थकों की आवाज दबाने की सैनिक–पुलिस कार्यवाही चलती है। किस प्रकार से उनके मानवाधिकारों का हनन होता है।

दमन की वीभत्स प्रक्रियाएं अधिकतर तानाशाही और शरीयतशाही जैसी सत्ता संस्कृति में देखी जाती है। ऐसी सत्ता संस्कृति को अपनी आबादी पर गोलियां बरसाने, बम बरसाने का फिर रासायनिक हमले से भी परहेज नहीं होता है। मिस्र और ट्यूनीशिया में तो गांधी की शांति का यथार्थ जरूर प्रस्थापित हुआ पर लीबिया में जिस प्रकार से गद्दाफी ने अपने विरोधियों पर बमों और युद्धक विमानों से हमले कराए है उसके परिणामस्वरूप हजारों नागरिक मारे गए हैं। चीन की कम्युनिस्ट तानाशाही का नागरिक आंदोलनों को कुचलने का इतिहास भी लोकतांत्रिक नहीं रहा हैं थ्येन मान चौक की वीभत्स घटना याद कीजिए जिसे दुनिया के मानवतावादी उसके लिए चीन को कभी माफ नहीं कर सकते। चीनी मीडिया में अरब–अफ्रीकी देशों में चल रही लोकतंत्र की लड़ाई की खबरों पर पहरा बैठा दिया गया है। वहाँ ऐसा इंटरनेट सिस्टम है जिससे कम्युनिस्ट तानाशाही या फिर क्रांति की सूचनाएं खुद प्रतिबंधित हो जाती है। गूगल ओर याहू जैसी इंटरनेट कंपनियों ने चीनी सेंसरशिप को स्वीकार कर लिया हे। वहाँ विदेशी पत्रकारी पर प्रतिबंध लगा दिया गया है। प्रतिबंध का उल्लंघन करने वाले दर्जनों विदेशी पत्रकार चीनी जेलों में बंद है। माओ का विचार, माओ की क्रांति से चीन ने पिछली सदी के अस्सी के दशक में ही मुँह मोड़ लिया था। वहाँ सत्तामूलक पूंजीवादी है। आर्थिक उदारीकरण की धारा में वह बहुत तेजी से बह रहा है। चीन में जहाँ श्रम कानूनों का अस्तित्व लगभग समाप्त है वहीं बहुराष्ट्रीय कंपनियां सस्ते मानवश्रम और उदार कानूनों का बेजा लाभ अर्जित कर रही हैं। हाल में मजदूरों ने कई हिंसक प्रदर्शन कर प्रदाता कंपनियों की उत्पादन प्रक्रिया बाधित की है। मजदूर आंदोलन की यह राह चीन में जहाँ बहुराष्ट्रीय कंपनियों की मजदूर विरोधी नीतियों को उजागर करती है वहीं चीनी कम्युनिस्ट तानाशाही के पूंजीवादी प्रेम को दर्शाती है। वहीं भुखमरी–बेकारी जैसी प्रक्रिया खतरनाक हुई है। चीन को स्वीकार करना चाहिए कि राजनीतिक स्थिरता से ही विकास और अर्थव्यवस्था का गुलाबी रंग बरकरार रखा जा सकता है। इसलिए उसे राजनीतिक सुधारों पर ध्यान देना चाहिए। राजनीतिक बंदियों की रिहाई और उनके साथ लोकतांत्रिक

प्रक्रिया ही उसके हित में है। पर चीनी कम्युनिस्ट तानाशाही को यह सुध आए तो कहां से ? वह तो अत्याचार और उत्पीड़न को ही एक मात्र विकल्प के रूप में देखता है।

इस प्रकार लोकतंत्र की चौथी लहर का प्रारम्भ टयूनीशिया से होकर, मिस्र, लीबिया, सीरिया, यमन, तुर्की और बहरीन आदि कई अरब देशों को प्रभावित करते हुए चीन और म्यांमार तक महसूस की गई। इस लहर में कई तानाशाही शासकों को अपनी कुर्सी गवानी पड़ी और कईयों को जनमानस के आगे झुकते हुए देश छोड़ना पड़ा। हाँ इतना अवश्य है कि कुछ देशों में यह सत्ता परिवर्तन बिना ज्यादा हिंसा किये सरलता से हो गया जैसा कि ट्यूनीशिया और मिस्र में हुआ तो कहीं पर युद्ध का सहारा लिया गया। जहाँ युद्ध में सैकड़ों लोगों का इस लहर में अपनी जान कुर्बान करनी पड़ी। लोकतंत्र की इस लहर से अरब जगत में नया सवेरा हो गया है। आने वाला समय बताएगा कि यह लोकतंत्र का सूर्य कितना तेज चमकता है। कई देशों की सरकारों ने इस लहर से प्रभावित होकर लोक कल्याणकारी नीतियां बनाना आरम्भ कर दिया है। सैन्य तानाशाह भी अब अपनी सत्ता का प्रयोग जनता की भलाई में करने लगे है। आने वाले समय में यदि उन देशों में स्थायी लोकतांत्रिक प्रक्रिया बहाल होती है और लोकतंत्र मजबूत होता है तो यह विश्व के लिए एक शुभ संकेत है।

"भारतीय सन्दर्भ में लोकतंत्र"

भारतीय लोकतंत्र की प्राच्य आधारपर्या

भारतीय लोकतंत्र की प्राच्य अवधारणा तथा सत्यापन अतयन्त समृद्ध है, वैदिक काल से लेकर स्मृतियों पुराणों आदि सभी आर्ष ग्रन्थों में शासन की विभिन्न पद्धतियों में लोकतंत्र को सर्वाधिक उन्नत पद्धति के रूप में स्थान दिया है। भारतीय राजनीति चिन्तकों में मनु, कौटिल्य गौतम, विष्णुधर्मोत्तर, शक्रनीति, विदुनीति आदि ने अपने ग्रन्थों में यद्यपि राजतंत्र को स्थापित किया है किन्तु राजा को धर्मभीरू[4] बनाया है, जहाँ वह जनता द्वारा लिये गये करों[5] को उन्ही के बीच में उचित ढंग से वितरित करता है, दण्ड की सर्वोच्च सत्ता[6] होने के बाबजूद धर्म का भय उसे किसी गलत काम करने से रोकत है (मनु के अनुसार राजा के द्वारा दण्ड प्रयोग के समय सम्यक् रूप से विचार करके दण्ड

4 मनु (VII 130), गौतम (X 25), विष्णुधर्मोत्तरपुराण (III 24), अभिज्ञानशाकुन्तल (5e25)

5 मनु (VII 130–135), शुक्रनीति (IV 2, 128-129) U.N. Ghoshal, Hindu Revenue System, Saraswat Press, Calcutta 1972, p. 135, P.V. Kane, History of Dharuashastra Vol. III, Bhandarkar Oriental Research Institute, Poona – 1973.

[6] दुष्टस्य दण्डः, जनस्य पूजा, न्यायेन कोषस्य च संप्रवृद्धिः। अपक्षपातोर्थिषु राष्ट्ररक्षा पञ्चैव यज्ञाः कथिताः नृपाणां।। अग्निसंहिता, 4/99, मनु IX 194-195, मनु IV 180, शुक्रनीति IV 5-14-15.

का विधान करना चाहिए नही तो सर्वतः विनाश होता है यही धर्म भय है। समीक्ष्य स धुतः सम्यक् सर्वा तञ्जयति प्रजाः। असमीक्ष्य प्रणीतस्तु विनाशयति सर्वतः।।)

प्लेटो के राजनीतिक विचारों में विशेषतया सामाजिक व्यवस्था को देखने से प्रतीत होता है कि वह मनु की वर्ण व्यवस्था से प्रेरित है, भारतीय संस्कृति विरासत की दृष्टि से अतयन्त समृद्ध देश है, विभिन्न व्यवस्थाये विभिन्न स्वरूपों में इस देश मे विद्यमान रही है। लोकतंत्रीय प्रणाली में शासन सत्ता का अन्तिम सूत्र जनसाधारण के हाथों में रहता है, ताकि सार्वजनिक नीति जनता की इच्छा के अनुसार और जनता के हित साधन के उद्देश्य से बनाई जाये और क्रियान्वित की जाये। वर्तमान लोकतंत्र की संकल्पना चिरसम्मत लोकतंत्र से भिन्न है, चिरसम्मत लोकतंत्र की निंदा प्लेटो[7] ने की, क्योंकि तत्कालीन यूनान में यही प्रणाली प्रचलित थी जब उसके गुरू सुकरात को मृत्यु दण्ड के लिये विवश कर दिया गया था। प्लेटो का मानना था कि जनसाधारण इतने शिक्षित नही होते हैं कि वह सर्वोत्तम शासकों व सबसे बुद्धिमतता पूर्ण नीतियों का चयन कर सके[8] लोकतंत्र के अन्तगर्त व वाक्पटु व मिष्टभाषी लोग जनसाधारण को प्रभावित करके उनके वोट ले जाते हैं और इस तरह सार्वजनिक पद प्राप्त कर लेते हैं परन्तु ये लोग अत्यंत स्वार्थी व सर्वथा अयोग्य होते हैं अतः राज्य को ध्वंस की ओर ले जाते हैं।

लोकतन्त्र का चिरसम्मत स्वरूप समाकालीन स्वरूप से भिन्न है– उदार लोकतंत्र का संगठनात्मक विकास समकालीन अवधारणा कहीं न कहीं एक विशिष्ट वर्ग को जन्म देती है जो किसी भी प्रकार से जनता में विश्वास बनाकर स्वयं को शासन में कायम रखता है।

भारत मे लोकतान्त्रिक प्रणाली अवश्य विद्यमान रही है किन्तु कालावशेष में यह अपने स्वरूप बदलता रहा। भारत को सन् 1947 में स्वतंत्रता प्राप्त हुई, अँग्रेजों ने सत्ता लोकतान्त्रिक ढंग से चुनी गई संस्था को प्रदान की वह सत्ता थी, संविधान सभा, जिसका निर्वाचन हुआ था[9] भारत में लोकतन्त्र की संसदीय परम्परा को चुना गया, जिसका तात्पर्य था कि जनतन्त्र को वाकायदा स्थापित करना, जनता द्वारा चुने गये प्रतिनिधियों द्वारा विधायिका व कार्यपालिका का गठन तथा जनता को उन प्रतिनिधियों को वापस बुलाने का अधिकार। न्यायपालिका संविधान की रक्षा करने के लिये ताकि जनता के मौलिक अधिकारों की रक्षा होती रहे। भारतीय लोकतन्त्र अत्यन्त समृद्ध रहा है जहाँ विश्व के

7 गाबा ओ.पी., राजनीतिक विचारों का इतिहास, पृ. 191
8 बारकर, वेस्टर्न पोलिटिकल थॉट्स, पृ. 211
9 कश्यप,सुभाष हमारा संविधान, पृ. 25

विभिन्न देशों विशेषतया पडोसी देशों में लोकतन्त्र ध्वस्त हो चुका है वहीं भारत में लोकतन्त्र सफलता पूर्वक कार्य कर रहा है।

लोक व लोकतन्त्र शब्द का भाषावैज्ञानिक विमर्श

संस्कृत साहित्य में लोकतन्त्र शब्द एक सामासिक पद है जिसके पूर्व पद अर्थात लोक शब्द का अर्थ V.S. Apte[10] देखना नजर डालना या प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करना किया है। कदाचित लोक शब्द ही अँग्रेजी भाषा में आकर Look शब्द से अविहित हुआ है। सुप्रसिद्ध भाषा वैज्ञानिक प्रो. विद्यानिवास मिश्र के अनुसार लोक देश का ही आनुभविक रूप है लोक शब्द की व्युत्तपति रूच/लुच से है, जिसका अर्थ है प्रकाशित होना है और प्रकाशित करना भी है, जो सामने प्रकाशित दिख रहा है और जो प्रकाशित कर रहा है। इस प्रकार लोक अपने में विशाल अर्थ समझता है। जो भी दृष्टिगत संसार है अथवा जो भी इन्द्रियगोचर संसार है वह लोक है। लोक अवधारणा मात्र नही बल्कि कर्म क्षेत्र है[11] भारतीय चिन्तनधारा एकांड्गिकता कभी नही स्वीकार करती है वह उसी को मानती है जो सम्पूर्ण हो समग्र हो। शासन व्यवस्था और न्याय व्यवस्था ने भी लोक का ही प्रामाण्य स्वीकार किया है। आदर्श कर्म–विपाक के आधार या जन्मान्तर के अधिकार के दावे के आधार पर न्यायालय निर्णय नही करता, जो भी साक्षी सामने आते हैं वे दृष्ट प्रमाण देते हैं। कारण यह है कि जन्मान्तर के अधिकार की बात करने से अधिकार का निर्णय कठिन हो जायेगा, लोक चलेगा नही। अदृष्ट लोकोत्तर की भूमिका व्यक्ति के जीवन में कम नही है, परंतु लोक की उपेक्षा करके नही। इसी लोक् शब्द में घञ् प्रत्यय लगकर लोक शब्द निष्पन्न होता है जिसका कोषगत अर्थ है– दुनिया संसार या विश्व का एक प्रभाग। उत्तरपद तन्त्र चुरादिगण का उभयपदी है, तन्त्रयति–ते, तांत्रिक अर्थात हुकूमत करना, नियंत्रण रखना, प्रशासन करना– प्रजाः प्रजाः स्वा इव तन्त्रीयत्वा। – (शाकुन्तलम 5/5) ये दोनो पद साथ ही पूर्व पद के पर्याय शब्द प्रजा तथा जन भी संस्कृत साहित्य के प्राचीनतम ऋक्थ ऋगवेद तथा सम्पूर्ण वैदिक साहित्य में पग पर प्राप्त होता है। किन्तु समुदित रूप से सामासिक एक पद का प्रयोग महाकवि कालिदास की सुपसिद्ध कृति अभिज्ञानशाकुन्तलम् के पंञ्चम अंक में मिलता है– 'अविश्रमोऽयं लोकतन्त्राधिकारः' कञ्चुकी जब श्रान्त राजा दुष्यन्त को देखता है तो उसके मुख से यह

10 वामनशिवराम आप्टे, संस्कृत, हिन्दी कोश

[11] विद्या निवास मिश्र, लोक और का स्वर वर्ष 2000, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 99.

12 Person, Lester B: Democracy in world Politics, P.P. 343.

अनायास ही निकल पडता है –कि लोकतन्त्र का कर्तव्य विश्राम रहित होता है। कवि के द्वारा प्रयुक्त लोकतन्त्र शब्द पूरी तरह से वर्तमान Democracy शब्द की आधारपर्या को व्यक्त करता है।

प्राच्य आधारपर्या

यद्यपि वर्तमान Democracy की सम्पूर्ण पृष्ठभूमि कुछ परिवर्तित रूप में वैदिक काल से ही आगत है। फ्रेन्च रिवल्यूशन (1976) ने Democracy का पथ स्वतंत्रता व समता का निर्धाति किया, जिसे नवदृष्टि की शुरूआत या आधारशिला का प्रतिष्ठा भी कही जा सकती है।[12] ऋगवैदिक ऋषी भी स्वतंत्रता व समात को ऋत तथा सत्य का उपगम मानता है जन को व्यवस्था प्रदान करने का। अथर्व–वैदिक ऋषि स्पष्ट रूप से बृहती समता की बात कहता है–

समानी प्रपा सहवोन्नभागः।
समानो योवत्रे सह वो युनिज्म।
आराः नाभिभिवाभिताः।।[13]

अर्थात सभी मनुष्यो का जल तथा अन्न पर समाधिकार है यहाँ जल और अन्न से तात्पर्य उन प्राकृतिक संसाधनो से है जो मानव जीवन के लिये अपरिहार्य है। ऋगवेद अत्यन्त पारदर्शी रूप में इस महत्वपूर्ण तथ्य को रेखंकित करता है–

अजेष्ठासो अकनिष्ठास एते संभ्रातरो वावृधुः सौभाग्य
संगच्छध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानी व आकूतिः समानानि हृदयानि वः।
समानुमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।।[14]

अर्थात कोई ज्येष्ठ नही है कोई कनिष्ठ नही है सभी भ्रता हैं सभी को सभी का ध्यान रखते हुये सामूहिक प्रगति करनी है। साथ आओ एक–दूसरे से वार्तालाप करो, अपने मन को एक बनाओ, दूसरे सहयोगियों को समान रखो, अपने विचारों को एक साथ एकत्रित होने दो, अपने हृदयों को मिलाओ ताकि सभी प्राणी ऋत व सत्य के नियमन में

---

[13] अथर्ववेद, 12/135.

[14] ऋग्वेद दशम मण्डल, 191 सूत्त 4 मन्त्र (सम्पादक पं. दामोदर सातवलेकर)

रह सकें। ऋत व सत्य के नियमन में जन भी है राजा भी है। इसलिये कालान्तर में मनुस्मृतिकार ने इसे राजधर्म से जोडा है–

यथा सर्वाणि भूतानि धराधारयते समम्।
तथा सर्वाणि भूतानि विभ्रतः पार्थिवव्रमत्।।[12]

तात्पर्य यह है कि पृथ्वी जिस प्रकार मातृ सदृश्य अपने बच्चों का समान रूप से ध्यान रखती है उसी प्रकार राजा को भी समग्र जीवों का (जन का) समान रूप से ध्यान रखना चाहिए। लोकतंत्र के आधार स्वरूप भारतीय संविधान में समानता के अधिकार को मूल अधिकारों के रूप में महत्व प्रदान किया गया है। संविधान 14 में यह उपबन्ध है कि राज्य भारत के राज्य क्षेत्र में किसी व्यक्ति को विधि के समक्ष समता से या विधियों के समान संरक्षण से वंचित नही करेगा। समता का सभी का सुख ही तो भारतीय ऋषियों का कण्ठहार है–

सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि प्श्यन्तु मा कश्चित् दुःखभग्भवेत्।।
प्रजा राजा का अपर पर्याय है तभी तो कौटिल्य कहते हैं–
प्रजा सुखे सुखं राज्ञः, प्रजानाम् च हिते हितम्।
नात्मप्रियम् हितं राज्ञः प्रजानामं तु प्रियं हितम्।।[15]

मेनका गाँधी बनाम भारत सरकार वाद 1978 (I) Sec.में सर्वोच्च न्यायालय का यह विशिष्ट निर्णयांश उल्लेखनीय है[14] –

Right represent in the democracy are the basic values cherished by the people of this country since the vedic time and the are calculated to protected the dignity of the individual and create condition in which every human being can develop his personality to the fullest extent.

इस कथन के साथ ही लोकतन्त्र के संबन्ध में यह संस्कृत गद्य विशेष वैशिष्ट्य के कारण उल्लेख हैं लोकतंत्र को सम्पूर्ण रूप से परिभाषित करता है– तत्र लोकतन्त्रं लोकानुशासनं, लोकस्य तन्त्रं अनुशासनम्, लोकेन तन्त्रम् अनुशासनम्, लोकायतन्त्रम अनुशासनम् व इति लोकतन्त्रस्य तात्पर्यार्थः। आधुनिक लोकतन्त्र का लक्षणगत व देशकालगत निदर्शन करते हुये संस्कृत कवि का यह श्लोक दृष्टव्य है–

[15] मनुस्मृति, IX 170

लोकतन्त्रस्य व्युत्पत्तिः केति पृश्टोऽभ्यभाषत,
पूर्व निर्वाचनत्तन्त्रः लोकाय परिकीर्तितिः।
निर्वाचने स्मारब्धे लोककर्त्तृक उच्यते
सम्पन्ने च पदे प्राप्ते लोककर्मक इष्यते।।

प्रजा द्वारा राजा के चुनाव का वर्णन भी ऋगवेद में प्राप्त होता है। लोकतंत्र में जनता का प्रतिनिधि ही राजा होता है। यजुर्वेद में ऐसे राजा की जनराट् कहा गया है। ऋगवेद के दशम मण्डल में राजसूयज्ञ में प्रजा द्वारा निर्वाचित राजा का राज्याभिषेक किया जाता है। इस अवसर पर प्रजा के सम्मानित प्रतिनिधि पुरोहित निर्वाचित राजा को सम्बोधित करते हुये कहते हैं–

आ त्वाहार्षमन्तरेधि ध्रुवास्तिष्ठाविचाचलिः।
विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु त्वाद्रास्ट्रमधिभ्रशत्।।[16]

अर्थात हे राजन हम आपको प्रजा में से ही लेकर आये हैं। आप हमारे बीच राजा बनकर स्थिर रहे और अविचल होकर शासन करें। सभी प्रजाजन आपको चाहते रहें। ऐसा न हो कि कहीं ये राष्ट्र आपसे छीन लिया जाये। इसके प्रत्युत्तर में राजा का अभिभाषण एवं प्रकारक है कि– मैं अपने शासनकाल में सविता, सरस्वती, त्वष्ट्रा, पूषा, इन्द्र, बृहस्पति, वरूण, अर्यमा, सोम और विष्णु – इन दस देवताओं से प्रेरणा ग्रहण करते हुये राष्ट्र का सञ्चाालन करूँगा–

सवित्रा प्रसवित्रा सरस्वत्या वाचा त्वष्ट्रा रूपै–पूष्णा पषुभिरिन्द्रियेणास्में।
बृहस्पतिना ब्रह्मणा वरूणेनौजसाऽग्निना तेजसा सोमेन
राजा विष्णुनादशम्या देवतया प्रसूतः प्रसर्यामि।[17]

सवितृ देवता उत्पत्ति रूप हैं। सवितृ से प्रेरणा लेकर राजा राष्ट्र में सब प्रकार के उत्पादनों पर ध्यान दें। सरस्वती वाणी का प्रतीक हैं। इसलिये राजा राष्ट्र की वाणी को न दबायें। त्वष्टा रूप का प्रतीक है। राजा, राष्ट्र में राग, रूप और उल्लास को पूर्त करें। पूषा पशुओं के रक्षक हैं। राजा राष्ट्र में पशुपालन और कृषि की ओर ध्यान दें। इन्द्र, वीरता, शौर्य एवं ऐश्वर्य के पतीक हैं। राजा राष्ट्र को वीर, शौर्यपूर्ण और एश्वर्य से आप्यायित करें। बृहस्पति ज्ञान के विचार के प्रतीक हैं, राजा राष्ट्र में ज्ञान विज्ञान की

[16] कौटिल्य, अर्थशास्त्र, 5–22
[17] मेनका गाँधी बनाम भारत सरकार, AIR 1978 (1) Sec

उन्नति करें। वरूण दण्डनात्मक शक्ति का प्रतीक है। राजा अपराधियों को नीतिपूर्वक उचित दण्ड दें। अग्नि तेजस शक्ति का प्रतीक है। राजा राष्ट्र को तेजस्वी बनावें। सोम, सौम्यता, आह्लाद तथा भेजष का प्रतीक है। राजा राष्ट्र में सौम्यता व आह्लाद लाये तथा स्वास्थ्य विभाग को सतर्क रखे। विष्णु विस्तार या व्यापकता के प्रतीक है। जैसे तीनो लोकों में विष्णु अपने चरण–विन्यास पदक्रम किये हुये हैं, ठीक वैसे ही राजा अपने प्रभाव से राष्ट्र में सर्वत्र व्यापक हैं। यजुर्वेद में राजा को वरूण कहा गया है क्योंकि वह प्रजा द्वारा वरण किया है–

निषसाद धृतव्रतो वरूणः पस्त्यास्वा।
साम्राज्याय सुक्रतुः मृत्योः पाहि विद्योत्पाहिः।।[18]

वर्तमान चुनाव प्रणाली से किंञ्चित् पृथक् परंपरा यजुर्वेद में प्राप्त होती है। एक वर्णन के अनुसार यह राजा हजारों ऋषियों के सहयोग से उसी प्रकार बलशाली बनाया गया है जिस प्रकार नदियों के मिलने से समुद्र विशाल व अथाह बनता है, अर्थात चुनाव में सभी जन भाग नही ले सकते अपितु मात्र ज्ञानीजन ही भाग ले सकते हैं। यहाँ आधारित वय का नहीं है अपितु ज्ञान की है–

अयं सहस्र ऋषिभिः सहस्कृतः समुद्रइव प्रपथे।
सत्यः सो अस्य महिमा गृणे शवो यज्ञेषु विप्रराज्ये।।[19]

यजुर्वेद में ही एक स्थल पर राजा के चुनाव की प्रक्रिया को संवरण कहा गया है–

त्वामग्ने वृणते ब्राह्मणा इमे शिवो अग्ने संवरणे भवा नः।
सपत्नाह नो अभिभातिजिच्च स्वे गये जागृह्म प्रयुच्छन्।।[20]

यहाँ संवरण पद का तात्पर्य है सम्यक् रूप से वरण करना अर्थात भलीभाँति ठीक ढंग से किया गया चुनाव। इसीलिये ऐसे राज्य को ऋषिराज्य अर्थात (ऋ गतौ) गतियुक्त राज्य कहा जाता है। निसःन्देह ऐसे राज्य के सुविचारित चयनित शासक माता–पिता के समान सम्पूर्ण प्रजा को विशाल कुटुम्ब (वसुधैव कुटुम्बकम्) मानकर उसकी अनुदिन वृद्धि समृद्धि के लिए सतत यत्नशील रहते थे। रघुवंश में महाकवि कालिदास का यह कथन – स पिता पितरस्तासां केवलं जन्महेतवाः, इस तथ्य को निश्चय ही पुष्ट करता है।

---

18 काव्य प्रपानिका, डॉ. कपिल देव पाण्डेय (2000), पृ. 57
19 ऋग्वेद, 10/173/1 (सम्पादक पं. दामोदर सातवलेकर)
20 .यजुर्वेद, 10/30 (सम्पादक पं. दामोदर सातवलेकर)
21 यजुर्वेद, 20/2 (सम्पादक पं. दामोदर सातवलेकर)
22 यजुर्वेद, 33/83 (सम्पादक पं. दामोदर सातवलेकर)
23 यजुर्वेद, 27/3 (सम्पादक पं. दामोदर सातवलेकर)

लोकतन्त्र का इससे उच्चतम उद्देश्य हो ही क्या सकता है कि अथर्ववेद में राजा को (शासक को) तथा राष्ट्र का राष्ट्र–भृत्य[21] अर्थात अनुचर कहा गया है– स विशोनुव्यचलतः।। अर्थात राजा प्रजा या विशः का अनुचर (अनुकूल चलने वाला) होता है।[21] वैदिक काल के राष्ट्र का शासन अकेला राजा नही करता था। उसके मार्गदर्शन के लिये सभा और समिति नामक दो संस्थायें होती थीं।

वयस्क नागरिक समिति में एकत्र होकर राज्य के लिये कानून बनाने में सहभागी होते थे, राजकीय नीति निर्धारण राज्य के सदस्यों (नागरिकों) के परामर्श से निर्धारित किया जाता था। अथर्ववेद के एक मन्त्र में राजा प्रार्थना करता है कि सभी समिति सदस्य उचित नीति रक्षण का विचार–विमर्श करें–

सभा च मा समितिरचावतां प्रजापतेर्दुहितरौ संविदाने।
येना संगच्छा उम मा स शिक्षाच्चारू वदानिसितरः सडतेषु।[22]

उक्त मन्त्र में पितरः, शब्द का अभिप्राय सम्भवतः उन्हे कहा गया जिन्हे प्रबुद्ध वरिष्ठ नागरिक कहा जाता है।

अथर्ववेद में राजा प्रार्थना करता है कि सभी सभासदों की वाणी एक हो व सभी सवाचस अर्थात समान वाणी वोलने वाला हो
ये ते के च सभासदस्ते मे सन्तु सवाचसः।[23]

इन सभी तथ्यों से सुस्पष्ट है कि वैदिक युग का शासक राजा कथमपि निरंकुश या स्वेच्छाचारी नही हो सकता था। इसलिये वैदिक काल के इन राज्यों के शासन को जनराज्य अर्थात जनता का राज्य कहा जाता था।

जनता द्वारा प्रत्यक्ष शासन लोकतंत्र का सर्वाधिक शुद्ध रूप है, जिसमें सभी लोग सरकार की गतिविधियों में भाग लेते हैं, प्राचीन भारत में ग्रामीण गणराज्यों में जनता को प्रत्यक्ष भागीदारी प्राप्त थी, आधुनिक लोकतांत्रिक व्यवस्था में जनता का प्रत्यक्ष निर्णय पाना अभी भी महत्वपूर्ण व विवादास्पद मुद्दों का एक मात्र हल समझा जाता है जब ब्रिटेन के यूरोपिय आर्थिक समूह में प्रवेश का प्रश्न एक विवादास्पद मुद्दा बन गया तब इस मुद्दे का समाधान जनमत संग्रह द्वारा हुआ। महत्वपूर्ण मुद्दों पर प्रत्यक्ष रूप से प्राप्त जनमत को अंतिम व न्यायसंगत लोकतानत्रिक निर्णय माना जाता है, प्रत्यक्ष लोकतंत्र

जनमत संग्रह, प्रस्तावाधिकार प्रत्यावाहन वापस वुलाना तथा लोकमत आदि के रूप में कार्य करता है। स्विटजरलैण्ड के कुछ कैण्टनों में अभी भी प्रत्यक्ष लोकतन्त्र को लागू किया गया है।

वस्तुतः प्रणाली के रूप में लोकतन्त्र की खूबियां व खामियाँ दोनो ही हैं, यदि जनसमूह में तात्विक इच्छा का अभाव है, लोकतन्त्र के सर्वाधिकारवादी बनने में, बिल्कुल बक्त नही लगेगा, रूस एक राजनीतिक विचारक के रूप में सर्वाधिकारवाद व लोकतन्त्र दोनो का जनक माना जाता है, क्योकि लोकतन्त्र का यह विशिष्ट वर्गीय या अल्पतंत्रीय स्वरूप पूरे राष्ट्र का विकास नही कर सकेगा, सत्ता जनता के शासन के नाम पर एक ऐसे वर्ग के अधीन हो जायेगी जो अपने स्वार्थ की पूर्ति में संलग्न होगा, जो निरंकुश राजतन्त्र से बदतर होगा, शायद यही बजह है कि लोकतन्त्र की सफलता की सबसे बडी शर्त है। जनता का जागरूक होना जो अपने बीच से ऐसे प्रतिनिधि को चुने जो सिर्फ अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिये ही प्रतिबद्ध न हो, बल्कि जनता की मनोभावना को भी समझा सकें।

समस्त विश्व में लोकतांत्रिक सरकारों को मानवाधिकार से बडा सरोकार है, मानवाधिकारों की रक्षा लोकतांत्रिक दृष्टि से चुनी गई सरकारों के समक्ष बडी चुनौती है, क्योंकि यह मुद्दा स्पष्ट रूप से जनता से जुडा हुआ है। भ्रष्टाचार लोकतंत्र की विफलता का ही परिणाम है, क्योंकि जिन प्रतिनिधियों हमने चुनकर भेजा है, उनका दायित्व है कि जनता के हित का ख्याल रखें और कुछ गलत न होने दे वस्तुतः संसदीय लोकतंत्र में सरकारें जनता के मत पर टिकी होतीं हैं और संविधान के बहुत सारे उपबन्ध उनकी इसी व्यवस्था पर कायम है, सामाजिक व आर्थिक न्याय को प्रदान करने वाले राज्यों के नीतिनिदेशक तत्व तभी लागू हो सकते हैं, यदि सरकारें (राज्य) उन्हे लागू करें, यह माना जाता था और संविधान के आरम्भिक 2–3 दशकों तक ऐसा हुआ भी कि नीति निदेशक तत्वों को लागू करने के लिये अधिकारों तक में संशोधन कर दिया गया, आज बिडम्बना यह है कि नीतिनिदेशक तत्वों के कुछ आदर्शों जैसे पर्यावरण संरक्षण, मादक दृव्य निषेध अदि के मामले में न्यायपालिका को पहल करनी पड रही है यह लोकतंत्र की असफलता नही तो क्या है? चुनावों में धनबल व बाहुबल हो जाने के कारण प्रतिनिधि जनता के मन में विश्वास कायम करने की बजाय यही शार्टकट अपनाना चाहते हैं।

प्राच्यकाल से भारतवर्ष में लोकतंत्र को एक श्रेष्ठ प्रणाली के रूप में मान्यता प्राप्त है, विकास क्रम में आतिताइयों का शासन रहा जिसमे राजतन्त्र व्यवस्था के रूप में प्रचलन में था, आधुनिक काल में जब ब्रिटिशर्स ने देश पर अपना शासन स्थापित कर

लिया तो जनविद्रोह व भारतीय जनता द्वारा अधिकारों की माँग ने धीरे–धीरे लोकतांत्रिक प्रक्रिया को भारत में जन्म दिया, और स्वतन्त्रता प्राप्ति के साथ ही हमारा शुमार विश्व के बडे लोकतंत्र में होने लगा, स्वतंत्रता प्राप्ति के 6 दशक बीत जाने पर भारत लोकतंत्र की वस्तुस्थिति पर पुनर्चचा अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि मानव मानव संबंधी मुद्दे चुनौतियां व समाधान सभी इस प्रणाली में निहित हैं, मूल्यों का संरक्षण इसमें ही सम्भव है।

भारत में लोकतंत्र के प्राचीनतम प्रयोग–

भारत में लोकतंत्र एवं प्रतिनिधि संस्थाओं का इतिहास बहुत पुराना है। उसकी जड़े ईसा से कम से कम 3000 वर्ष पूर्व वैदिक काल जाती है। लोकतान्त्रिक सिद्धान्तों एवं प्रतिनिधि संस्थाओं का प्रारम्भिक उल्लेख ऋग्वेद और अथर्ववेद से मिलता है और बाद में महाभारत, शुक्राचार्य के नीतिशास्त्र, बौद्ध साहित्य, कौटिल्य के अर्थशास्त्र आदि में। किन्तु उस लोकतंत्र में राजा भी होता था और उस राजा को शासन व्यवस्था में आदर एवं सम्मान प्राप्त था। केवल राजा की उपस्थिति के कारण यह तर्क नहीं दिया जा सकता कि वह लोकतंत्र नहीं राजतंत्र था। राजतंत्र में राजा को अनियंत्रित अधिकार प्राप्त होते हैं। किन्तु प्राचीन भारत में ऐसा नहीं था। राजा अपने आमात्यों, सभासदों तथा प्रजाजनों के परामर्श से राज–काज चलाता था और प्राचीन राजव्यवस्था में राजा के अधिकारों का नहीं कर्त्तव्यों का बोध था। राजा का अस्तित्व केवल राजतंत्र का द्योतक माना जाए तो ब्रिटेन व जापान भी राजतंत्र कहे जाएंगे। किन्तु राजा के रहते हुए भी ब्रिटेन और जापान की गणना आधुनिक युग के अच्छे लोकतंत्रात्मक राज्यों में की जाती है।

प्राचीन गणतांत्रिक व्यवस्था में आजकल की तरह ही शासक एवं गुणों के आधार पर इनके चुनाव की प्रक्रिया आज के दौर से थोड़ी भिन्न जरूर थी। सभी नागरिकों को वोट देने का अधिकार नहीं था। ऋग्वेद तथा कौटिल्य साहित्य ने चुनाव पद्धति की पुष्टि की है। परन्तु उन्होंने वोट डालने के अधिकार पर रोशनी नहीं डाली है।

वर्तमान संसद की तरह ही प्राचीन समय में परिषदों का निर्माण किया गया था। जो कि वर्तमान संसदीय प्रणाली से मिलता जुलता था। गणराज्य या संघ की नीतियों का संचालन इन्हीं परिषदों के द्वारा होता था। इसके सदस्यों की संख्या विशाल थी। उस समय के सबसे प्रसिद्ध गणराज्य लिच्छवि की केन्द्रीय परिषद् में 7707 सदस्य थे। वहीं

यौधेय की केन्द्रीय परिषद् के 5000 सदस्य थे। वर्तमान संसदीय सत्र की तरह परिषदों के अधिवेशन नियमित रूप से होते थे।

किसी भी मुद्दे पर निर्णय होने से पूर्व सदस्यों के बीच में इस पर खुलकर चर्चा होती थी। सही गलत आकलन के लिए जोरदार बहस होती थी। उसके बाद ही सर्वसम्मत्ति से निर्णय का प्रतिपादन किया जाता था। सबकी सहमति न होने पर बहुमत प्रक्रिया अपनायी जाती थी। कई जगह सर्वसम्मति होना, अनिवार्य होता था। बहुमत से लिए गए निर्णय को **'भूयिसिवम'** कहा जाता था। इसके लिए मतदान का सहारा लेना पड़ता था। तत्कालीन समय में वोट को **'छनद'** कहा जाता था। निर्वाचन आयुक्त की भांति इस चुनाव की देख रेख करने वाला भी एक अधिकारी होता था। जिसे **'शालाग्राहक'** कहते थे वोट देने के लिए 3 प्रणालियाँ थी।

(1) **गूदक (गुप्त रूप से)** – अर्थात् अपना मत किसी पर लिखकर जिसमें वोट देने वाले व्यक्ति का नाम नहीं आता था।

(2) **विवृतक (प्रकट रूप से)** – इस प्रक्रिया में व्यक्ति संबंधित विषय के प्रति अपने विचार सबके सामने प्रकट करता था। खुले आम घोषणा

(3) **संकर्णजल्पक** (शालाकाग्रह के कान में चुपके से कहना)

सदस्य इन तीनों मे से कोई भी एक प्रक्रिया अपनाने के लिए स्वतन्त्र थे। शालाकाग्राहक पूरी मुस्तैदी और ईमानदारी से इन वोटों का हिसाब करता था।

इस तरह हम पाते हैं कि प्राचीन काल से ही हमारे देश में गौरवशाली लोकतंत्रीय परम्परा थी। इसके अलावा सुव्यवस्थित शासन के संचालन हेतु अनेक मंत्रालयों का निर्माण भी किया गया था। उत्तम गुणों एवं योग्यता के आधार पर इन मंत्रालयों के अधिकारियों का चुनाव किया जाता था।

मंत्रालयों के प्रमुख विभाग थे–

1. औद्योगिक तथा शिल्प संबंधी विभाग
2. विदेश विभाग
3. जनगणना
4. क्रय–विक्रय के नियमों का निर्धारण

मंत्रिमण्डल का उल्लेख हमें 'अर्थशास्त्र' 'मनुस्मृति', 'शुक्रनीति' महाभारत इत्यादि से प्राप्त होता है। यजुर्वेद और ब्राहमण ग्रंथों में इन्हें रत्नि कहा गया। महाभारत के अनुसार मंत्रिमडल में 6 सदस्य होते थे। मनु के अनुसार सदस्य संख्या 7–8 होती थी। शुक्र ने इसके लिए 10 की संख्या निर्धारित की थी। इनके कार्य इस प्रकार थे :–

(1) **पुरोहित–** यह राजा का गुरू माना जाता था राजनीतिक और धर्म दोनों में निपुण व्यक्ति को ही यह पद दिया जाता था।

(2) **उपराज**– (राजप्रतिनिधि) इसका कार्य राजा की अनुपस्थिति में शासन व्यवस्था का संचालन करना था।

(3) **प्रधान–** प्रधान अथवा प्रधानमंत्री, मंत्रिमण्डल का सबसे महत्वपूर्ण सदस्य था। वह सभी विभागों की देखभाल करता था।

(4) **सचिव**– वर्तमान के रक्षामंत्री की तरह ही इसका काम राज्य की सुरक्षा व्यवस्था सम्बन्धी कार्यों को देखना था।

(5) **सुमन्त्र–** राज्य के आय–व्यय का हिसाब रखना इसका कार्य था। चाणक्य ने इसको समाहर्ता कहा।

(6) **आमात्य–** का कार्य सम्पूर्ण राज्य के प्राकृतिक संसाधनों का नियमन करना था।

(7) **इत**– वर्तमान काल की इंटेलीजेंसी की तरह इनका कार्य गुप्तचर विभाग को संगठित करना था।

इसके अलावा भी कई विभाग थे। इतना ही नहीं वर्तमान काल की तरह ही पंचायती व्यवस्था भी हमें अपने देश में देखने को मिलती है। शासन की मूल इकाई गांव को ही माना गया था। प्रत्येक गांव में एक ग्रामसभा होती थी। जो गांव की प्रशासन व्यवस्था, न्याय व्यवस्था से लेकर गांव के प्रत्येक कल्याणकारी काम को अंजाम देती थी। इनका कार्य गांव की प्रत्येक समस्या का निपटारा करना, आर्थिक उन्नति, रक्षा कार्य, समुप्रत शासन व्यवस्था की स्थापना कर एक आदर्श गांव तैयार करना था। ग्रामसभा के प्रमुख को ग्रामीण कहा जाता था।

सम्पूर्ण राज्य छोटी–छोटी इकाइयों में बंटा था और प्रत्येक इकाई अपने एक छोटे राज्य सी थी और स्थानिक शासन के निमित्त अपने में पूर्ण थी। समस्त राज्य की शासन

सत्ता एक सभा के अधीन थी, जिसके सदस्य उन शासन–इकाइयों के प्रधान होते थे। एक निश्चित काल के लिए सबका एक मुख्य अथवा अध्यक्ष निर्वाचित होता था। यदि सभा बड़ी होती तो उसके सदस्यों में से कुछ लोगों को मिलाकर एक कार्यकारी समिति निर्वाचित होती थी। यह शासन व्यवस्था एथेन्स में ककाइस्थेनीज के संविधान से मिलती जुलती थी। सभा में युवा एवं वृद्व हर उम्र के लोग होते थे। उनकी बैठक एक भवन में होती थी जो सभागार कहलाता था।

एक प्राचीन उल्लेख के अनुसार अपराधी पहले विचारार्थ – **विनिश्चयमहापात्र** नामक अधिकारी के पास उपस्थित किया जाता था। निरपराध होने पर अभियुक्त को वह मुक्त कर सकता था पर दण्ड नहीं दे सकता था। उसे अपने से ऊपर न्यायालय भेज देता था। इस तरह अभियुक्त को 6 उच्चन्यायालयों के सम्मुख उपस्थित होना पड़ता है। केवल राजा को दण्ड देने का अधिकार था। धर्मशास्त्र और पूर्व की नजीरों के आधार पर ही दण्ड होता था।

देश में कई गणराज्य विद्यमान थे। मौर्य साम्राज्य का उदय इन गणराज्यों के लिए विनाशकारी सिद्व हुआ। परन्तु मौर्य साम्राज्य के पतन के पश्चात कुछ नए लोकतांत्रिक राज्यों ने जन्म लिया। यथा – **यौधेय, मानव** और **अर्जुनीयन** इत्यादि।

प्राचीन भारत के कुछ प्रमुख गणराज्यों का ब्यौरा इस प्रकार है

शाक्यः– शाक्य गणराज्य वर्तमान बस्ती और गोरखपुर जिला (उत्तर प्रदेश) के क्षेत्र में स्थित था। इस गणराज्य की राजधानी कपिलवस्तु थी। यह सात दीवारों से घिरा हुआ सुन्दर और सुरक्षित नगर था। इस संघ में 80 लाख कुल 5 लाख जन थे। इनकी राजसभा शाक्य परिषद के 500 सदस्य थे। ये सभा प्रशासन और न्याय दोनों कार्य करती थी। सभा भवन को सान्यागार कहते थे। यहां विशेषज्ञ एवं विशिष्ट जन विचार–विमर्श कर कोई निर्णय देते थे। शाक्य परिषद का अध्यक्ष राजा कहलाता था। भगवान बुद्व के पिता शुद्वोदन शाक्य क्षत्रिय राजा थे। कौशल के राजा प्रसेनजित के पुत्र विडक्धभ ने इस गणराज्य पर आक्रमण कर इसे नष्ट कर दिया था।

लिच्छविः– लिच्छवि गणराज्य गंगा के (उत्तरी विहार क्षेत्र) स्थित था। इसकी राजधानी का नाम वैशाली था। बिहार के मुजफ्फरपुर जिले के बसाढ ग्राम में इसके अवशेष प्राप्त होते है। लिच्छवि क्षत्रिय वर्ण के थे। वर्द्वमान महावीर का जन्म इसी गणराज्य में हुआ था। इस गणराज्य का वर्णन जैन एवं बौद्व ग्रन्थों में प्रमुख रुप से

मिलता है। वैशाली की राज्य परिषद में 7707 सदस्य होते थे। इसी से इसकी विशालता का अनुमान लगाया जा सकता है। शासन कार्य के लिए दो समितियां होती थी। पहले नौ सदस्यों की समिति वैदेशिक सम्बंधों की देखभाल करती थी। इसकी आठ सदस्यों की समिति प्रशासन का संचालन करती थी। इसे इष्टकुल कहा जाता था। इस व्यवस्था में तीन प्रकार के विशेषज्ञ होते थे – विनिश्चय महामात्र, व्यवहारिक और सूत्राधार

वज्जि – लिच्छवि, विदेह, कुण्डलग्राम के ज्ञातृक गण तथा अन्य पांच छोटे गणराज्यों ने मिलकर जो संघ बनाया उसी को वज्जि संघ कहा जाता था। मगध के शासक निरन्तर इस पर आक्रमण करते रहे। अन्त में यह संघ मगध के अधीन हो गया।

उम्बष्ठ – पंजाब में स्थित इस गणराज्य ने सिकन्दर से युद्व न करके संधि कर ली।

अग्रेय – वर्तमान अग्रवाल जाति का विकास इसी गणराज्य में हुआ है। इस गणराज्य में सिकन्दर की सेनाओं का डटकर सामना किया। जब उन्हें लगा युद्व में जीत हासिल नहीं कर पायेंगे तब उन्होंने स्वयं अपनी नगरी को जला दिया।

इनके अलावा अरिष्ट **औटुम्वर, कठ, कुणिन्द, क्षुद्रक, पातानप्रस्थ** इत्यादि गणराज्यों का उल्लेख भी प्राचीन ग्रन्थों में मिलता है।[24]

व्यवहार में लोकतंत्र : भारत में चुनाव

स्वतंत्र रीति से, स्वच्छ, भयुक्त, सतत् तथा अत्यधिक प्रतियोगात्मक चुनाव, सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार पर आधारित आधुनिक प्रतिनिधिक लोकतंत्र में लोगों के द्वारा शासन का मुख्य चिन्ह माना जाता है। चुने गए प्रतिनिधि चुनावों के द्वारा अपनी वैधता पाते हैं तथा मत देने वाले नागरिक अपनी पसंद के प्रतिनिधियों को चुनकर अपने मताधिकार का प्रयोग करते हैं। प्रतिनिधिक लोकतंत्र का प्रश्न है– शासन करने का न्यायसंगत अधिकार किसे हैं ? और इस प्रश्न का एक मात्र उत्तर चुने गए प्रतिनिधि ही हैं। आधुनिक लोकतंत्र में जिस मतदान प्रणाली का पालन किया जाता है, वह एकल संक्रमणीय मत प्रणाली की आनुपातिक प्रतिनिधितव प्रणाली है, जिसके काफी वैकल्पिक रूप है।

इसके साथ ही आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली में जो आधारभूत अंतर है, वह यह कि एकल संक्रमणीय मत प्रणाली में चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवारों में जो बहुमत प्राप्त

[24] Altekar dr: history of ancient india

करता है, वही जीतता है तथा आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली में चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवारों के द्वारा पाए गए वोटों का 'मत प्रतिशत के अनुपात' के आधार पर जीतने वाले तथा हारने वालों के बीच मत बांटे जाते हैं भारत ने एक सरल एकल संक्रमणीय मत (First-Past-The Post) पद्धति अपनायी हे, जिसमें प्रत्येक वयस्क नागरिक इस उम्मीदवार के चुनाव चिन्ह के आगे मुहर लगाते हैं, जिसके पक्ष में वे अपना मत देना चाहते हैं।

संविधान निर्माताओं ने 1952 में हुए प्रथम साधारण चुनाव के समय से ही 21 वर्ष की आयु के प्रत्येक वयस्क नागरिक को मत देने का अधिकार दिया (जिसे बाद में घटाकर 18 वर्ष कर दिया गया)। मत देने का अधिकार प्रत्येक वयस्क को बिना उसके धर्म, जाति, पंथ, लिंग के बारे में सोचे हुए दिया गया। भारत में मताधिकार द्वरा वयस्क अपने प्रतिनिधियों को चुनते हैं, ऐसी ही पद्धति आरंम्भिक दौर में पश्चिमी लोकतंत्र में दिखाई देती है। सरसरी नजर से देखने में भारत और पश्चिम देशों के लोकतंत्र में यह समानता तो दिखती है, पर यहां गौरतलब बात यह है कि भारत में वयस्क मताधिकार का प्रयोग व पश्चिमी देशों के मताधिकार के प्रयोग में शक्ति के पूर्वाग्रहों का अंतर आ ही जाता है, जबकि भारत में लोकतंत्र के अंतर करने की शक्ति की गुंजाइश है ही नहीं और यही भारत के लोकतंत्र का अनूठापन है।

फ्रांसीसी विचारक एलेक्सीस डी. टोकविल (Alexis de Tocqueville) ने अपनी पुस्तक **'ऑन डेमोक्रेसी इन अमेरिका'** में 1835 में अमेरिकी लोकतंत्र का बहुत गुणगान किया, जिसे बाद में गैरी यंग (Gary Younge) ने भी 2007 में लिखा कि 'आज से 50 वर्ष पहले, काले अमेरिकी अपमान तथा मौत का सामना कर रहे थे, ताकि वो मत दे सकें।'' क्या टोकविले (Tocqueville) को अमेरिकी लोकतंत्र पर लिखी गई अपनी पुस्तक पर खेद व्यक्त होगा, अगर वे इसे भारत के संदर्भ में सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार से तुलना करेंगे।

संविधान के भाग 15 के 324वें अनुच्छेद में यह साफ तौर पर कहा गया है कि 'चुनावों का दिशा–निर्देश तथा नियंत्रण चुनाव आयोग के अध्यक्ष के द्वारा निहित किया जाएगा' तथा अनुच्छेद 325 में कहा गया है कि 'कोई भी व्यक्ति इसें शामिल होने के लिए अयोग्य नहीं है या कोई लिंग, जाति, नस्ल, धर्म–समुदाय के आधार पर चुनाव संबंधी कार्यों में विशेष भूमिका के लिए उसे शामिल नहीं किया जा सकता। इसके अतिरिक्त

संविधान निर्माताओं ने स्वतंत्र चुनाव आयोग का गठन करके स्वतंत्र तथा लगातार चुनावों के संचालन के लिए एक संस्थागत व्यवस्था भी प्रदान की। बल्कि सबसे बड़ा विजयी उल्लास भी माना हे। सत्ता परिवर्तन केवल क्रांति या संघर्ष के माध्यम से ही होता है, किंतु भारत में राज्य तथा केंद्र दोनों स्तरों पर सरकारें पूरी तरह से लोगों के द्वारा बदली या बनाई जाती हैं। 1977 में, भारतीयों ने चुनावों में एक सरकार को बाहर का रास्ता दिखा दिया। फिर 1980 में, उन्होंने यह निर्णय लिया कि, उसी सरकार को फिर से सत्ता में वापसी करनी चाहिए।

भारतीय मतदाताओं की भागीदारी, चुनावों में मतदाताओं के वास्तविक दर्जे को जानने के लिए यह उल्लेखनीय है कि चुनावों के दौरान भारतीय नागरिक राजनीति में सक्रिय होते हैं या सरकार के लोकतांत्रिक सहभागी रूप के आगे होने वाले प्रयोग में वे सिर्फ मूकदर्शक बने होते हैं। नेहरू युग के नेतृत्व के दौरान 1952 के लोकसभा चुनावों में मतदाताओं का प्रतिशत **45.7%** (488 लेकसभा सीओं के लिए), यह **1957 में 47.7%** (494 सीटों पर) तथा **1962 में 55.4%** (494 सीटों पर) था। भारतीय लोकतंत्र के प्रारंभिक दौर में भारतीय मतदाताओं के चुनाव संबंधी प्रक्रियाओं में येागदान मतदान में क्रमशः बढ़ोत्तरी को दिखाती है। यहां पर बताने योग्य है कि **नेहरू ने पहले तीन लोकसभा चुनावों के दौरान पूरे देश का भ्रमण किया तथा उन्होंने न सिर्फ देश को चलाने वाले महान नेता का कार्य किया, बल्कि लोकतंत्र में मत देने के अधिकार के महत्व को बताने वाले महान शिक्षाविद् तथा शिक्षक का भी कार्य किया।**

आंकड़ों तक ही सीमित नहीं था, इसकी प्रमाणिक व्याख्या यह है कि इंदिरा गांधी के आपातकाल–विरोधी कानून ने 60.5% मतदाताओं को आकर्षित किया तथा 1984 के लोकसभा चुनावों के पहले तात्कालिक प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी की हत्या के परिणामस्वरूप 64.1% पुरूष तथा स्त्री मतदाता मतदान केंद्रों पर पहुंचे। भारतीय मतदाताओं ने 'आपातकाल' की घटना को लोकतांत्रिक चुनाव संबंधी प्रक्रियाओं में विश्वास के साथ व्यक्त किया।

1990 के दशक तथा 20वीं सदी के शुरूआती दौर में भारतीय लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं को प्रभावित किया। पहला, 1990 के दशक की पूरी तरह धर्म तथा जाति पर आधारित राजनीति के दावे से चरितार्थ होता है, जिसे राजनीतिक रूप से चलाने वाले संघ परिवार थे, जो राजनीति में भारतीय जनता पार्टी का प्रतिनिधितव करता है। इसके

बाद 1989 के लोकसभा चुनावों के परिणामस्वरूप वी.पी. सिंह तथा चंद्रशेखर के द्वारा गठित सरकारें उनकी पार्टी के परस्पर अंतरविरोध के कारण काफी कम समय तक चला। 1991 के लोकसभा चुनाव 56.7% मतदाताओं की भागीदारी का गवाह बना तथा 1991 में गठित केंद्र सरकर का कार्यकाल 1996 तक रहा, लेकिन इन दशकों में भारतीय राजनीति में जातिवाद ओर सांप्रदायिकता बहुत बड़े रूप में उभरकर सामने आया, जो आने वाले लोकसभा चुनावों क्रमशः 1996, 1998, 1999, 2004 में और मजबूत हुआ। उक्त चुनावों में जाति आधारित, संप्रदाय आधारित और प्रादेशिक राजनीतिक पार्टियेां ने पूरे भारतवर्ष में सीधे कांग्रेस, चूंकि यह अब तक की सबसे बड़ी जनताद्वारा चुनी गई पार्टी थी, को टक्कर दी। 1999 के 13वें लेकसभा में मतदाताओं का वोट प्रतिशत 59.99% था जो 2000 में घटकर 58.07% हो गया। इस तरह, भारतीय राजनीति में मतदाताओं का मत देने का रूझान कम होता दिखना शुरू हुआ और साथ ही धीरे–धीरे भारतीय चुनाव पद्धति में एक नई तरह की गति और स्फूर्ति देखी गई, आजकल के चुनावों में प्रतियोगिता और प्रतिद्वंद्विता का वातावरण बहुत सकारात्मक रूप से उभरकर आया है, क्योंकि मतदाता सक्रियता और सोच–समझकर अपने मत के अधिकार का प्रयोग करते हैं।

चुनावों के कार्यावधिक दौरान चुनाव आयेाग के प्रमुख चुनाव आयुक्तों टी.**एन. शेषन, जे.एम. लिंगदोह, जे. कृष्णामूर्ति** ने सक्रिय कार्यकर्ताओं की भूमिका निभाई है तथा अपनी शक्तियों का पूरा उपयोग किया है। चुनावों के दौरान ये प्रत्येक राज्यों में केंद्र से चुनाव पर्यवेक्षकों को भेजते रहे हैं तथा कानून–व्यवस्था बनाए रखने एवं मतादाताओं को उत्साहित करने ताकि उनमें उत्साह बनाए रखने के लिए केंद्रशासित पुलिस बलों की नियुक्ति करते रहे हैं।

एन. गोपालास्वामी ने 14 मई, 2007 के चुनावों में यह महसूस किया कि **''मैं चुनावों के दौरान इतने बड़े मात्रा में केंद्रीय बलों के प्रयोग से खुश नहीं हूँ। दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र, जो बंदूकधारी कार्यकर्ताओं के द्वारा चलाया जाए।''** वह आगे कहते हैं कि ''मैं सोचता हूँ कि यह अवलोकन का समय है कि क्यों न इसका दायितव राज्य के पुलिस बल को दिया जाए।''

इसके अतिरिक्त 1990 का दशक एक ऐसे नये प्रचलन का गवाह बना, जिसमें देखा गया कि शहरी मध्यवर्ग, जो विकासशील है, में चुनावों में भागीदारी क प्रति उमंग कम होती चली गई, जबकि ठीक उसी समय दलित स्त्री तथा पुरूष मतदाताओं ने

चुनावों के दौरान दावे के साथ अपने मतदान के अधिकार का प्रयोग किया। 1999 के लोकसभा चुनावों में 65.67% मतदाताओं की उपस्थिति चुनावों के दौरान दर्ज की गई।

1992 में हुए संविधान के 73वें संशोधन में चुनाव में भाग लेने के लिए जनसाधारण स्तर से समुचित सुविधाएं तथा अधिकार प्रदान किए गए। इसने राज्य के तीसरे स्तर पंचायती राज संगठन की स्थापना के लिए ढांचा प्रदान किया।

16वीं लोकसभा

भारत में 16वीं लोकसभा के लिए आम चुनाव 7 अप्रैल से 12 मई 2010 तक 9 चरणों में हुए। मतगणना 16 मई को हुई इसके लिए भारत की सभी संसदीय क्षेत्रों में वोट डाले गये। अब तक के इतिहास में सबसे लंबा कार्यक्रम वाला चुनाव था। यह पहली बार हुआ जब देश में 9 चरणेां में लोकसभा चुनाव हुए। निर्वाचन आयोग के अनुसार 81. 45 करोड़ मतदाता पंजीकृत हैं।

सभी 9 चरणों में औसतन मतदान 67.38 प्रतिशत के आसपास रहा जो भारतीय आम चुनाव के इतिहास में सबसे उच्चतम है चुनाव परिणाम 16 मई को घोषित किये गये। 337 सीटों के साथ **राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन** सबसे बड़ा दल और 282 सीटों के साथ **भारतीय जनता पार्टी** सबसे बड़ी पार्टी बनकर उभरी। संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन से 49 सीटों पर और कांग्रेस ने 44 सीटों पर जीत हासिल की।

2014 लोकसभा चुनाव की विशिष्टतायें

1. सर्वाधिक मतदान

2. सबसे अधिक खर्चीला

3. अमेरिकी राष्ट्रपति के चुनाव की तर्ज पर लड़ा गया। भाजपा के नरेन्द्र मोदी को प्रधानमंत्री पद का प्रत्याशी घोषित किया था।

4. सर्वाधिक महिलाएं विजयी हुई।

5. उत्तर भारत के क्षेत्रीय दलों (सपा, बसपा, नदयू, आरजेडी आदि) की अभूतपूर्व पराजय। बसपा को एक भी सीट नहीं।

6. 1952 को छोड़ कर सबसे कम मुसलमान सांसद (22) उत्तरप्रदेश सहित 27 राज्य और केन्द्र शासित प्रदेशों में से एक भी मुस्लिम उम्मीदवार लोकसभा नही ंपहुँच सका। 1962 के बाद से हुए आम चुनावों के बाद यह संख्या सबसे कम है हालांकि 1952 के पहले आम चुनाव में केवल 49 मुसलमान ही जीते थे।

7. भाजपा अब तक की सर्वाधिक सीटें 282, अपने दम पर साधारण बहुमत प्राप्त किया।

8. कांग्रेस की अब तक की सबसे कम सीटें (44)

मोदी सरकार के 24 महीने और 24 योजनाएं

बीजेपी नीत एनडीए सरकार ने 26 मई 2016 को अपने कार्यकाल के दो बहुमूल्य साल पूरे कर लिए हैं, आकांक्षाओं, अपेक्षाओं, विकास के दावों और विपक्ष से लगातार तकरार के बीच जिन मुद्दों पर सरकार को घेरा गया, उनमें एक प्रमुख मुद्दा यह भी रहा कि सरकार पिछली यानी यूपीए सरकार की योजनाएं की ही री–पैकेजिंग कर रही है।

हालांकि, प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने कई मौकों पर इस बावत विपक्ष पर पलटवार भी किया। उन्होंने कहा, अगर कोई पुरानी और अच्छी योजना पहले से मौजूद हैं तो नई योजना बनाने और उसके क्रियान्वयन में समय देने से अच्छा है कि पुरानी योजना को ही और बेहतर बनाकर सामने लाया जाए।

विपक्ष और सरकार के बीच तकरार का यह दौर नया नहीं है, लेकिन इन दो वर्षों में योजनाओं के बूते जनता को क्योंकि कुछ मिला, यह जानना भी बेहद जरूरी है, तो आइए एक नजर डालते हैं मोदी सरकार द्वारा 24 महीनों में लाई गई 24 योजनाओं और उनसे जनता को मिलने वाले लाभ पर–

1. डिजिटल इंडिया

- प्रधानमंत्री की सबसे महत्वाकांक्षी योजनाओं में से एक डिजिटल इंडिया की शुरूआत 21 अगस्त 2014 को हुई।
- इस अभियान का उद्देश्य भारत को एक इलेक्ट्रानिक अर्थव्यवस्था में बदलना है।
- सरकार की मंशा है कि सभी सरकारी विभाग और भारत की जनता एक दूसरे से डिजिटल रूप से या इलेक्ट्रॉनिक तौर पर जुड़े ताकि प्रभावी प्रशासन चलाया जा सके।
- इसका एक लक्ष्य कागजी कार्यवाही कम से कम करके सभी सरकारी सेवाओं को जनता तक इलेक्ट्रॉनिकली पहुंचाना है।
- सबसे महत्वपूर्ण यह कि इसके तहत देश के सभी गांवों और ग्रामीण इलाकों को इंटरनेट नेटवर्क से जोड़ना है।

➢ डिजिटल भारत के तीन प्रमुख घटक बताए गए हैं– डिजिटल बुनियादी सुविधाएं, डिजिटल साक्षरता और सेवाओं का डिजिटल वितरण।

➢ सरकार का मत है कि ऐसा करने से सरकारी कामकाज में पारदर्शिता बढ़ेगी, जिससे लाल फीताशाही का खात्मा होगा।

➢ सरकार ई–गवर्नंस और ई–क्रांति के जरिए तकनीकी के माध्यम से जनता के कामकाज का जल्द से जल्द निस्तार करना चाहती है।

2. प्रधानमंत्री जन धन योजना

➢ प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने 28 अगस्त 2014 को प्रधानमंत्री जन धन योजना की शुरूआत की इसकी घोषणा उन्होंने 15 अगस्त 2014 को अपने पहले स्वतंत्रता दिवस भाषण में की थी।

➢ यह एक वित्तीय समावेशन कार्यक्रम है। इस कार्यक्रम के शुरू होने के पहले दिन ही डेढ़ करोड़ बैंक खाते खोले गए थे और हर खाता धारक को 1,00,000 रूपये का दुर्घटना बीमा कवर दिया गया।

➢ इस योजना के तहत अब तक 3.02 करोड़ खाते खोले गए और उनमें करीब 1,500 करोड़ रूपये जमा किए गए।

➢ इस योजना के अनुसार कोई भी व्यक्ति जीरो बैलेंस के साथ बैंक खाता खोल सकता है।

➢ RuPay डेबिट कार्ड की शुरूआत।

3. स्वच्छ भारत अभियान

➢ प्रधानमंत्री ने 24 सितंबर 2014 को स्वच्छ भारत अभियान को मंजूरी दी जो, पिछली सरकार द्वारा शुरू किए गए निर्मल भारत कार्यक्रम का संशोधित रूप है।

➢ स्वच्छ भारत अभियान को औपचारिक रूप से महात्मा गांधी की जयंती पर 2 अक्टूबर 2014 को शुरू किया गया।

➢ इसके तहत 2019 तक यानी महात्मा गांधी की 150वीं जयंती तक भारत को स्वच्छ बनाने का लक्ष्य किया गया है।

➢ इसके तहत सरकार ग्रामीण और दूरस्थ इलाकों तक शौचालय और साफ–सफाई की सुविधाएं पहुंचाने का काम कर रही है।

➢ इसमें जनता में सफाई के लिए, साफ सड़कों और गलियों के लिए, अतिक्रमण हटाने के लिए जागरूकता पैदा करना भी शामिल है।

➢ शहरी विकासमंत्रालय ने हाल ही में सबसे साफ शहरों की सूची जारी की, जिसमें मैसूर नंबर वन शहर बना, इसके बाद तिरूचिपल्ली और नवीं मुंबई को क्रम से दूसरे और तीसरे नंबर पर रखा गया।

4. मेक इन इंडिया

➢ मूल रूप से यह एक नारा है, जो प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने दिया है। इसके तहत भारत में वैश्विक निवेश और विनिर्माण को आकर्षित करने की याजना बनाई गई, जिसे 25 सितंबर 2014 को लॉन्च किया गया।

➢ बाद में आगे चल कर यह एक इंटरनेशनल मार्केटिंग अभियान बन गया। **मेक इन इंडिया** अभियान इसलिए शुरू किया गया, जिससे भारत में बड़ी संख्या में रोजगार के अवसर पैदा हो और अर्थव्यवस्था को बढ़ावा मिले।

➢ मेक इन इंडिया की कोशिश है कि भारत एक आत्म निर्भर देश बने। इसका एक उद्देश्य देश में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को अनुमति देना और घाटे में चल रही सरकारी कंपनियों की हालत दुरूस्त करना भी है।

➢ मेक इन इंडिया अभियान पूरी तरह से केंद्र सरकार के अधीन है और सरकार ने ऐसे 25 सेक्टरों की पहचान की है, जिनमें ग्लोबल लीडर बनने की क्षमता है।

5. प्रधानमंत्री उज्जवला योजना

➢ इसकी शुरूआत प्रधानमंत्री ने 1 मई 2016 को यूपी के बलिया से की।

➢ उज्जवला योजना के तहत 3 करोड़ बी.पी.एल. परिवार की महिलाओं का मुफ्त रसोई गैस कनेक्शन दिया।

➢ प्रधानमंत्री ने घोषणा की है कि आने वाले में तीन वर्षों में 5 करोड़ गरीब परिवारों को जहां लकड़ी का चूल्हा जलता है। मुफ्त गैस कनेक्शन दिया जाएगा।

6 सांसद आदर्श ग्राम योजना

➢ प्रधानमंत्री मोदी ने 11 अक्टूबर 2014 को सांसद आदर्श ग्राम योजना की शुरूआत की।

➢ इस योजना के मुताबिक, हर सांसद को साल 2019 तक तीन गांवों को विकसित करना होगा।

➢ इसकी योकरी यह है कि भारत के गांवों को भौतिक और संस्थागत बुनियादी ढांचे के साथ पूरी तरह विकसित किया जा सके।

➢ इस योजना के लिए कुछ दिशा–निर्देश भी हैं, जिन्हें ग्रामीण विकास विभाग ने तैयार किया है।

➢ प्रधानमंत्री ने 11 अक्टूबर 2014 को इन दिशा निर्देशों को जारी किया और सभी सांसदों से अपील की कि वे 2016 तक अपने संसदीय क्षेत्र में एक मॉडल गांव और 2019 तक दो और गांव तैयार कर।

7. अटल पेंशन योजना

➢ प्रधानमंत्री जन धन योजना की सफलता से उत्साहित देश की युवा पीढ़ी को ध्यान में रखकर तैयार की गई मोदी सरकार की यह एक और अहम योजना है।

➢ वित्त मंत्री अरूण जेटली ने फरवरी 2015 के बजट भाषण में कहा था, दुखद है कि जब हमारी युवा पीढ़ी बूढ़ी होगी उसके पास भी कोई पेंशन नहीं होगी। यह योजना इसी कमी को दूर करने के लक्ष्य के साथ शुरू की गई।

➢ इससे ये सुनिश्चित होगा कि किसी भी भारतीय नागरिक को बीमारी, दुर्घटना या वृद्धावस्था में अभाव की चिंता नहीं करनी पड़ेगी।

➢ इसे आदर्श बनाते हुए राष्ट्रीय पेंशन योजना के तौर पर अटल पेंशन योजना एक जून 2015 से प्रभावी हो गई।

➢ इस योजना का उद्देश्य असंगठित क्षेत्र के लोगों को पेंशन लाभों के दायरे में लाना है।

➢ इससे उन्हें हर महीने न्यूनतम भागीदारी के साथ सामाजिक सुरक्षा का लाभ उठाने की अनुमति मिलेगी।

8. बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ

➢ प्रधानमंत्री ने 22 जनवरी 2015 को हरियाणा के पानीपत से इस योजना की शुरूआत की।

➢ 100 करोड़ रूपये की शुरूआती राशि के साथ यह योजना देशभर के 100 जिलों शुरू की गई।

➢ हरियाणा में जहां बाल लिंगानुपात (सीएसआर) बेहद कम है, इस योजना का लक्ष्य लड़कियों को पढ़ाई के जरिए सामाजिक और वित्तीय तौर पर आत्मनिर्भर बनाना है।

➢ सरकार के इस नजरिए से महिलाओं की कल्याण सेवाओं के प्रति जागरूकता पैदा करने और निष्पादन क्षमता में सुधार को बढ़ावा मिलगा।

9. प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना

➢ गरीबी के खिलाफ लड़ाई और बेहतर रोजगार अवसर के लिए देश के लोगों खासकर युवाओं को कुशल बनााने के लिए इस योजना की शुरूआत की गई।

➢ 15 जुलाई 2015 को इसकी शुरूआत करते हुए पीएम ने कहा, अगर देश के लोगों की क्षमता को समुचित और बदलते समय की आवश्यकता के अनुसार कौशल का प्रशिक्षण देकर निखारा जाता है तो भारत के पास दुनिया को 4 से 5 करोड़ कार्यबल उपलब्ध करवाने की क्षमता होगी।

➢ सरकार इसके तहत देश के इंडस्ट्रियल ट्रेनिंग सेंटर्स को बढ़ावा देती है, ताकि युवाओं को कार्यकुशल बनाया जा सके।

10. स्टार्टअप इंडिया स्कीम

➢ इसकी शुरूआत 5 अप्रैल 2016 को नोएडा के सेक्टर–62 में की गई।

➢ इस योजना के लिए प्रधानमंत्री ने एक वेब पोर्टल की शुरूआत की।

➢ इस स्कीम को लेकर भारत के उद्यमी वर्ग में खासा उत्साह है, इसका उद्देश्य नए उद्यमियों को स्थापित करने में मदद करना है।

➢ इससे देशभर में रोजगार बढ़ेगा योजना के अंतर्गत 10 लाख रूपये से 100 लाख रूपये तक की सीमा में ऋणों के लिए अनुसूचित जाति अनुसूचित जन जाति और महिलाओं के बीच उद्यमशीलता को प्रात्साहन दिया जाएगा।

➢ 10 हजार करोड़ रूपये की शुरूआती धनराशि के साथ भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक (डिबी) के माध्यम से फिर से वित्त सुविधा।

➢ एनसीजीटीसी के माध्यम से लोन गारंटी के लिए 5000 करोड़ रूपये के कोष का निर्माण।

11. सुकन्या समृद्धि योजना

- इस योजना की शुरूआत पीएम मोदी ने 22 जनवरी 2015 को की।
- यह असल में बेटी बचाओ–बेटी पढ़ाओं योजना का ही विसतार है, जिसका मकसद देश में बेटियों के लिए सकारात्मक माहौल तैयार करना है।
- इसमें बेटी के नाम से बैंक खाता खोलने पर सबसे अधिक 9.2 फीसदी का ब्याज दर मिलता है।
- इससे इनकम टैक्स में छूट मिलती है।
- इस खाते की मैच्योरिटी खाता खोलने की तारीख से 21 साल या फिर बेटी की शादी की तारीख जो पहले आ जाए होती है।
- इसमें शुरूआती जमा राशि 1000 रूपये है, जबकि अधिकतम 1.5 लाख रूपये तक जमा किया जा सकता है।

12. मुद्रा बैंक योजना

- प्रधानमंत्री ने इस योजना की शुरूआत 8 अप्रैल 2015 को की।
- इसके तहत मुद्रा बैंक छोटे एटरप्रेन्योर्स को 10 लाख रूपये तक का क्रेडिट देती है और माइक्रो फाइनेंस इंस्टिट्यूशंस के लिए रेगुलेटरी बॉडी की तरह काम करती है।
- इसका उद्देश्य छोट एंटरप्रेन्योर्स को बढ़ावा देना है।
- इसमें तीन विकल्प हैं– शिशु में 50 हजार तक का लोन, किशोर में 50 हजार से 5 लाख तक का लोन और तरूण में 5 लाख से 10 लाख तक का लोन दिया जाता है।

13. प्रधानमंत्री जीवन ज्योति बीमा योजना

- यह सरकार के सहयोग से चलने वाली जीवन बीमा योजना है।
- इसमें 18 साल से 50 साल तक के भारतीय नागरिक को 2 लाख रूपये का बीमा कवर सिर्फ 330 रूपये के सालाना प्रीमियम पर उपलब्ध है।
- इसकी शुरूआत प्रधानमंत्री मोदी ने 9 मई 2015 को की थी।

14. प्रधानमंत्री सुरक्षा बीमा योजना

- इसकी शुरूआत भी 9 मई 2015 को ही की गई थी।
- इसमें 18 से 70 साल की उम्र के नागरिक की दुर्घटनावश मृत्यु या पूर्ण विकलांगता की स्थिति में 2 लाख का कवर दिया जाता है।

➢ आंशिक विकलांगता की स्थिति में 1 लाख का बीमा कवर है।

15. किसान विकास पत्र

➢ यह एक सर्टिफिकेट योजना है, जो पहली बार 1988 में लॉन्च की गई थी, नई सरकार ने से 2014 में री–लॉन्च किया है।

➢ इसमें 1 हजार, 5 हजार, 10 हजार और 50 हजार की राशि को 100 दिनों दोगुना करने का प्रावधान है।

➢ इसमें किसी एक व्यक्ति या ज्वॉइंट नाम पर भी सर्टिफिकेट जारी किया जाता है, जिसका कर्ज लेने के क्रम में इस्तेमाल किया जा सकता है।

➢ इसे वित्त मंत्री अरूण जेटली ने 18 नवंबर 2014 को लॉन्च किया।

16. कृषि बीमा योजना

➢ इसके तहत किसान अपनी फसल का बीमा करवा सकते हैं, यदि मौसम के प्रकोप से या किसी अन्य कारण से फसल को नुकसान पहुंचता है तो यह योजना किसानों की मदद करती है।

17. प्रधानमंत्री ग्राम सिंचाई योजना

➢ मोदी सरकार खुद को किसानों की सरकार बताती है। इसी क्रम में गृह मंत्री राजनाथ सिंह ने यह सिंचाई योजना लॉन्च की। इसके तहत देश की सभी कृषि योग्य भूमि को सिंचित करने का लक्ष्य है।

18. स्वायल हेल्थ कार्ड स्कीम

➢ सरकार इसके तहत किसानों को उनकी कृषि भूमि की उर्वरकता के आधार पर स्वायल हेल्थ कार्ड जारी करती है।

➢ इस कार्ड में मिट्टी की जांच के बाद इस बात की जानकारी रहती है कि मिट्टी को किन उर्वरकों की जरूरत है साथ ही इसमें कौन से फसल बेहतर हो सकते हैं।

➢ मोदी सरकार ने इसके लिए 100 करोड़ का बजट भी दिया है।

19. HRIDAY (नेशनल हेरिटेज सिटी डेवलपमेंअ एंड ऑग्मेंटटेशन योजना)

➢ शहरी विकास मंत्रालय ने 21 जनवरी 2015 को इस योजना की शुरूआत की।

➢ इस उद्देश्य हेरिटेज सिटीज के विकास पर है।

➢ मार्च 2017 तक इस योजना के मद में 500 करोड़ रूपये खर्च किए जा रहे हैं।

➢ अजमेर, अमरावती, अमृतसर, बदामी, द्वारका, गया, कांचीपुरम, मथुरा, पुरी, वाराणसी, वेलंकणी और वारंगल में इसे तहत काम हो रहा है।

20. इंद्रधनुष

➢ इस योजना का उद्देश्य बच्चों में रोग–प्रतिरक्षण की प्रक्रिया को तेज गति देना।

➢ इसमें 2020 तक बच्चों को सात बीमारियों–डिप्थीरिया, काली खांसी, टिटनेस, पोलियो, टीबी, खसरा और हेपेटाइटिस बी से लड़ने के लिए वैक्सीनेशन की व्यवस्थाऐं की गई हैं।

➢ इसे 25 दिसंबर 2014 को केंद्रीय स्वास्थ्य मंत्री जेपी नड्डा ने लॉन्च किया।

21. दीन दयाल उपाध्याय ग्राम ज्योति योजना

➢ भारत के गांवों को अबाध बिजली आपूर्ति लक्ष्यित करते हुए इस योजना की शुरूआत की गई है।

➢ सरकार गांवों तक 24×7 बिजली पहुचाने के लिए इस योजना के तहत 75 हजार 600 करोड़ रूपये खर्च करने वाली है।

➢ यह योजना राजीव गांधी ग्रामीण विद्युतीकरण योजना के रिप्लेनसमेंट के तौर पर लाई गई।

22. दीन दयाल उपाध्याय ग्रामीण कौशल योजना

➢ यह योजना ग्रामीण जगत के युवाओं को रोजगार के अवसर मुहैयाकरवाने के लिए लक्षित है।

➢ 25 सितंबर 2014 को केंद्रीय मंत्री नितिन गड़करी और वैंकैया नायडू ने इसकी शुरूआत की।

➢ इसे तहत 18 साल से 35 साल के ग्रामीण युवाओं को रोजगार के अवसर दिए जाएंगे।

23. महात्मा गांधी प्रवासी सुरक्षा योजना

➢ यह योजना विदेश मंत्रालय के अधीन है। इसके तहत विदेशों में रह रहे भारतीय मजदूरों के लिए पेंशन और जीवन बीमा की व्यवस्था।

➢ यह एक वॉलेंटियरी स्कीम है।

24. उड़ान प्रोजेक्टी

- जम्मू एवं कश्मीर में (उड़ान) योजना की शुरूआत विशेष उद्योग पहल के तहत 40,000 युवाओं को पांच साल में प्रमुख उच्च विकास क्षेत्र में कौशल प्रदान करने और उनमें रोजगार क्षमता बढ़ाने के उद्देश्य से की गई है।
- राष्ट्रीय कौशल विकास परिषद (एनएसडीसी) और निगमित क्षेत्र द्वारा इस योजना का क्रियान्वयन पीपीपी मोड में किया जा रहा है।

भारत की राजनीतिक पार्टियों के लिए सुझाव :–

जब तक सरकारें देश में लोलुभावन राजनीति करती रहेंगी तब तक लोकतंत्र का चहुँमुखी विकास सम्भव नहीं है। अर्थात् जब लोग अपना प्रतिनिधि चुनते है हैं तो उस प्रतिनिधि और उसकी 'सरकार' से बहुत सारी उम्मीदें लगाये रहते हैं। लेकिन सरकार बनने पर वह मतदाता निर्वाचित प्रतिनिधि के पास जाकर अपनी जरुरी चीजों के लिए याचना करता है लेकिन वह चक्कर काट–काट कर राजनीति का शिकार हो जाता है क्योंकि उनका घोषणा–पत्र लोकलुभावन राजनीति से प्रेरित होता है जिससे वह एक जुमला साबित होता है या योजनाओं की पहुँच और उनका निस्तारण की गति बहुत धीमी हो जाती है।जिससे लोगों का राजनीति और नेताओं के प्रति द्रष्टिकोण नकारात्मक हो जाता है। भारत में ऐसा कई बार देखने को मिला जिसमें हम U.PA सरकार के 2004 से 2014 तक का सफरनामा देखे तो समस्त कार्यकाल में सिर्फ घोटाले नजर आए जिससे आम लोगों को महंगाई का सामना करना पड़ा। लागों का आक्रेश U.PA सरकार पर ऐसा निकला सिर्फ 48 सीटें प्राप्त हुई और N.D.A. सिर्फ पूर्ण बहुत वाली सरकार लोगों द्वारा निर्वाचित हुई N.D.A. सरकार की 2 साल की 24 योजनाओं का इसी क्रम में चलता रहा तो देश का आधारभूत ढांचा सशक्त हो जाएगा, और इस 'विशाल लोकतंत्र' को सरकार के प्रति लोगों का 'अटल विश्वास' का रास्ता बन जाएगा जिससे सरकार और आम आदमी के बीच की दूरी खत्म हो जाएगी।

जागरण फोरम 2016 प्रधानमंत्री का भाषण

हमारे देश में लोकतंत्र का सीमित अर्थ रहा है। जिसका अर्थ हम चुनाव से लगाते हैं जिसमे हम वोट देकर पाँच साल का कान्ट्रेक्ट (ठेका) देते है। अगर वह कान्ट्रेक्ट में फेल हो गया तो हम दूसरे को लेकर आएंगे ये क्रम चलता रहता है। सरकारें

बदलते–बदलते हम मतदान उत्सव का बहुत ही उत्सुकता से उसका इंतजार करने लगते हैं। सरकार बदलते–बदलते हम अपनी निर्भरता खोने लगते हैं और प्रत्येक काम को सरकार के माध्यम से करवाना चाहते हैं। जैसे कि गांधी जी का माडल था। सब कुछ जनता करेगी, जिससे उन्होंने आजादी के आन्दोलन को जन–आन्दोलन में बदल दिया समाज–सुधार का कोई भी काम आजादी के साथ जोड़ दिया था।

गांधी जी का यही मॉडल (सब कुछ जनता करेगी) जनता में कर्तव्य परायणता की भावना पैदा करना चाहते थे। यह कर्तव्य परायणता सरकार को बहुत मजबूत बनाऐगी जिससे लोग स्वयं में जागरूक बनेंगे, यही जागरूकता का प्रयास जागरूकता बढ़ाएगी, जिससे समस्या समाधान के रास्ते निकलते हैं और साथ में सरल होते हैं, जन भागीदारी बढ़ती है। लाकतांत्रिक व्यवस्थायें मजबूत हाती हैं। विकास को तीव्र गति प्राप्त होती है और लक्ष्य प्राप्ति निश्चित हो जाता है।[25]

आज हमारे सामने लोकतंत्र के दो बड़े खतरे हैं।

1. मंत्र तंत्र (बौद्विक तानाशाही)[26]
2. धन तंत्र

1. मन तंत्र– जिसे हम बौद्विक तानाशाही भी कह सकते हैं, जिसमें हम यह कह सकते हैं। मेरा मन मैं कुछ भी बोलूं जैसे नवीनतम घटना क्रम में जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय (जे.एन.यू.) छात्रसंघ अध्यक्ष कन्हैया और कुछ सहयोगियों द्वारा Go India Back का नारा दिया भारत के सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इसको गलत माना गया है।
मन तंत्र में हम अभिव्यक्ति की आजादी का प्रयोग रामबाण के रूप में करते हैं। जहाँ पर हम अपने अभिव्यक्त किये हुए वाणों को Social Media समाचार पत्र, इण्टरव्यू, Public Place में बोलते रहते हैं। जिसके कि लोकतंत्र का निर्माण करने वाली कड़ियाँ कमजोर पड़ जाती हैं और समाज में उपस्थित सभी वर्गों के लोगों को आघात पहुँचता है।

2. धनतंत्र– मनी तंत्र से लोकतंत्र को कैसे बचाया जाए इसके लिए हमारे साथ सभी लोग साथ आए और Minimium Government and good gouevence के तहत काम किया जा रहा है और इसके तहत इसे रोका जा सकता है।

---

[25] http://www.jagran foram.com/modi speech accessed on 2015

[26] भारती रोहित 2016: '' धर्म जनता के लिए अफीमः भारत के सन्दर्भ में एक अध्यन'' 2.102 pp.56-62.Agust. 2016 < www.researchinspiration.com

भारतीय लोकतंत्र के समक्ष चुनौतियाँ

भारतीय संविधान की उद्देशिका में भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न समाजवादी पंथनिरपेक्ष लोकतंत्रात्मक गणराज्य स्वीकार किया गया। इस उद्देशिका में सम्प्रभुता शक्ति जनता में निहित की गई ताकि लोकतांत्रिक गणराज्य का निर्माण किया गया। लोकतंत्रात्मक शब्द का अभिप्राय है भारत सरकार की शक्ति का स्रोत भारत की जनता होगी। लोकतांत्रिक सरकार जनता की, जनता के लिए तथा द्वारा स्थापित सरकार है। जनता द्वारा प्रतिनिधियों का निर्वाचन होता है तथा वे जनता के प्रति उत्तरदायी होते हैं। भारत में अप्रत्यक्ष प्रतिनिधि प्रणाली को अपनाया गया है।

भारतीय लोकतंत्र स्वतन्त्रता, समानता तथा भ्रातृत्व की भावना से ओत–प्रोत है। भारत में राजनीतिक व आर्थिक लोकतंत्र की भी स्थापना की गयी। असमानता समाप्त करने के लिए समाजवादी आदर्शों को स्वीकार किया गया। वर्तमान में भारतीय लोकतंत्र के समक्ष अनेक चुनौतियाँ उपस्थित हुई, जिसने भारतीय लोकतंत्र को अस्थिरता प्रदान की। लोकतंत्र के समक्ष उपस्थित प्रमुख समस्यायें में,

1. वंशवाद
2. जातिवाद
3. क्षेत्रवाद
4. साम्प्रदायिकता
5. नक्सलवाद
6. भ्रष्टाचार
7. राजनीतिक अपराधीकरण

भारत जैसे विशाल देश में लोकतंत्र एक वृहद स्तर पर है। एक आम आदमी जब लोकतंत्रीय व्यवस्था के बारे में सोचता है तो अक्सर लोकतंत्र की ये विशेषताएं उसके ध्यान में रहती है :–

1. गरीबी उन्मूलन
2. गरीब को गरिमा के साथ जीने का अधिकार मिले
3. कृषि में सुधार
4. आम आदमी और नौकरशाही के बीच की दूरी कम हो
5. सरकारी योजनाओं का समाज के सभी वर्गों तक पहुंच

6. आपदा के समय सरकार द्वारा क्षतिपूर्ति प्रदान की जाए
7. विशेषाधिकारों का अन्त हो
8. रोजगार के साधन उपलब्ध हो
9. चिकित्सा सुविधा अच्छी, सुचारु रुप से उपलब्ध हो
10. सड़के अच्छी तथा परिवहन सुविधा प्राप्त हो
11. पुलिस का व्यवहार जनता के प्रति मित्रवत् हो
12. उत्तरदायी सरकार जो मूलभूत वस्तुओं को मंहगा न होने दे
13. सरकार को चुनने की आजादी

वंशवाद की गिरफ्त में भारत

वंशवाद या परिवारवाद शासन की यह पद्वति है जिसमें एक ही परिवार, वंश या समूह से एक के बाद एक कई शासक बन जाते है। वंशवाद, भाई भतीजावाद का जनक और इसका एक रुप है। ऐसा माना जाता है कि लोकतंत्र में वंशवाद के लिए कोई स्थान नहीं है किन्तु फिर भी अनेक देशों में अब भी वंशवाद हावी है। वंशवाद निकृष्टतम कोटि का आरक्षण है। वंशवाद, आधुनिक, राजनैतिक सिद्वान्तों एवं प्रगतिशीलता के विरुद्व है।

दशकों से भारतीय राजनीति में कश्मीर से कन्याकुमारी तक चंद राजनीतिक परिवारों का दबदवा रहा है, वंशवाद भारतीय राजनीति का एक ऐसा विषय है जिसका अध्ययन और आलोच्य करते कई राजनेता और कई दल इसकी चपेट में आ गए अक्सर यह बात सिर्फ गांधी परिवार के विषय में उभरती थी लेकिन सभी राज्य किसी–किसी प्रकार से उसमें शामिल हो गए है।

वंशवाद से हानियाँ

1. वंशवाद के कारण नये लोग राजनीति में नहीं आ पाते
2. वंशवाद सच्चे लोकतंत्र को मजबूत नहीं होने देता
3. आयोग्य शासक देश पर शासन करते है जिससे प्रतिभासम्पन्न के बजाय मेडियोक्रेसी को बढ़ावा मिलता है।
4. समान अवसर का लाभ पीछे छूट जाता है।
5. ऐसे कानून एवं नीतियां बनायी जाती है जो वंशवाद का भरण–पोषण करती रहती है।
6. आम लोगों में कुंठा की भावना घर करने लगती है।

7. दुष्प्रचार (प्रोपेगैण्डा), चमचातंत्र, धनबल एवं भ्रष्टाचार को बढ़ावा दिया जाता है ताकि जनता का ध्यान वंशवाद की कमियों से दूर रखा जा सके। जनता में स्वतंत्रता की भावना की कमी बनी रहती है। देश की सभी प्रमुख संस्थायें पंगु बनाकर रखी जाती है।

टाइम्स नाओ के पत्रकार **अर्णव गोस्वामी** जब राहुल गांधी से जब सवाल करते है कि बार–बार आपके परिवार का नाम क्यों लिया जाता है? राहुल कहते है कि मैं नाम नहीं लेता हूँ। कौन कहता है? असली मुद्दा यह है कि मैं इस परिवार में मैं पैदा हुआ यह मेरा चयन नहीं था। मैंने दस्तखत नहीं किए थे कि मैं इस परिवार में पैदा होना चाहूँगा। मैं वंशवाद की अवधारणा के खिलाफ हूँ।

भारत में वंशवाद का प्रत्येक राज्य का चित्रण का उल्लेख निम्न प्रकार है।

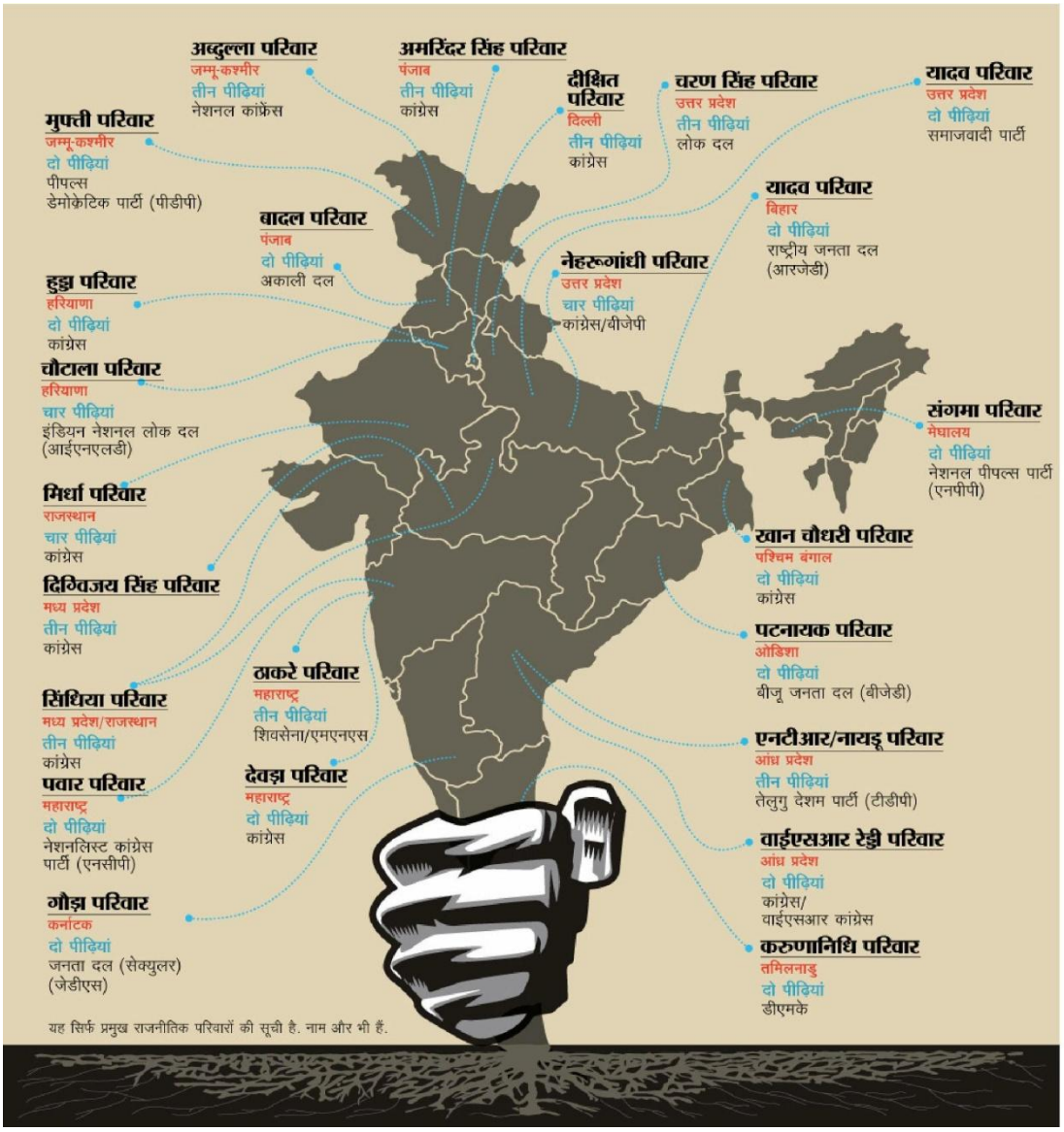

समाधान

भारत में वंशवाद की प्रक्रिया लगातार जारी है जिसके परिणाम से पता चलता है कि निरन्तर प्रयोग से जनभागीदारी खत्म हो रही है, जिससे लोकतंत्र में ''गुमराह लोकतंत्र'' का जन्म हो रहा है। इसे खत्म करने के लिए जनजागरुकता का विकास किया जाए। समय–समय पर विद्यालयों, विश्वविद्यालयों, सेमीनार का आयोजन कर प्राचीन इतिहास का उल्लेख कर वंशवाद से उत्पन्न होने वाली अलोकतांत्रिक व्यवस्था से उत्पन्न अव्यवस्था को बताया जाए। ग्रामीण स्तर पर ग्रामसभाओं में वंशवाद के ऊपर ग्रामीण भाषा में नाटक का आयोजन कर इसके दुष्परिणाम के विषय में बताया जाए।

जाति व राजनीति में अंर्तसम्बध

भारत में राजनीति जातिवाद के इर्द–गिर्द घूमती है तथा वही प्रमुख राजनीतिक दल है। जयप्रकाश नारायण, माइनर वीनर तथा मॉरिस जोन्स के अनुसार भी भारत में **''जाति स्वयं में एक राजनीतिक दल बना हुआ है।''** जे.सी. जौहरी के अनुसार, ''यदि मनुष्य राजनीतिक क्षेत्र में ऊपर उठना चाहते हैं तो उन्हें अपने साथ जाति व धर्म को लेकर चलना चाहिये। राजनीति में जमने हेतु शक्ति आवश्यक है, शक्ति के लिये संगठनों का सहारा जरूरी है तथा जाति स्वयं में शक्तिशाली संगठन होती है अतः राजनीति को जाति का सहारा लेना पड़ता है।''

आज जातीय समुदायों के संगठनों के समर्थन बिना राजनीतिज्ञों का राजनीतिक सत्ता तक पहुँचना सम्भव नहीं है। भारतीय लोकतंत्र में जातीय संगठनों व राजनीति पर उनके प्रभाव को स्पष्टतः देखा जा सकता है। चुनावों के दौरान राजनेताओं द्वारा जातीय संगठनेां का प्रयोग अपने पक्ष में समर्थन जुटाने व स्थिति को मजबूत बनाने हेतु किया जाता है। जातियाँ संगठित होकर प्रत्यक्षतः राजनीति में हिस्सा लेती हैं। इस प्रकार जातियाँ 'राजनीति शक्तियाँ' बनकर उभरी हैं ताकि इनकी राजनीति पर पकड़ मजबूत होती जा रही है। शिक्षाकरण, नगरीकरण तथा आधुनिकीकरण के प्रभाव से मध्यम व निम्न जातियों की राजनीति पर प्रभाविता निरन्तर बढ़ती जा रही है।

जातिवाद पर आधारित राजनीति के इस रूप ने राजनीतिक, प्रशासनिक निर्णय प्रक्रिया, मतदान व्यवहार, मंत्रिमण्डलों में जातिगत प्रतिनिधित्व, जातिगत दबाव समूहों, लोकसभा व विधानसभाओं में जातिगत आरक्षण व राज्यों की राजनीति में अपना व्यापक प्रभाव डाला है। न केवल राष्ट्रीय राजनीति वरन् राज्य स्तरीय राजनीति पर भी

'जातिवाद' का व्यापक प्रभाव है। **माइकेल ब्रेचर** का भी यही मानना है कि **''राष्ट्रीय राजनीति की बजाय राज्य स्तरीय राजनीति पर जातिवाद का प्रभाव अधिक है।**'' यद्यपि भारत में किसी भी राज्य की राजनीति जातिगत प्रभावों से अछूती नहीं है। किन्तु बिहार, उत्तरप्रदेश, केरल, तमिलनाडु, हरियाणा, महाराष्ट्र, आंध्रप्रदेश व राजस्थान आदि राज्यों की राजनीति में 'जातिगत गणित' अधिक रहा है। विशेषतः उत्तरप्रदेश, बिहार जातिगत राजनीति के मुख्य उदाहरण हैं। यहाँ जातिवाद 'जातीय कट्टरता' के रूप में उभरा है तथा जातीय हिंसा का कारण बना है।

जाति का सकारात्मक स्वरूप

मूलतः जातिवाद को राष्ट्रीय एकता के मार्ग में बाधक व लोकतंत्र की चुनौती माना जाता है, क्योंकि इससे न केवल पृथक्तावाद की भावना फैली है वरन् राष्ट्रीय हितों की अपेक्षा जातिगत हितों का महत्व बढ़ने लगा है। किन्तु यदि जातिगत सकारात्मकता पर दृष्टि डाली जाये तो स्पष्ट होता है जाति ने समाज व्यवस्था में एक संपर्क सूत्र की भूमिका अदा कर, समाज के ऐसे लोगों जो पारस्परिक दृष्टि से पिछड़े व समाज के निम्न स्तर पर हैं उनमें लोकतांत्रिक प्रक्रिया में हिस्सा लेने की क्षमता पैदा की है। ऐसी जातियों में जागृति का संचार हुआ है ताकि सामूहिकता की भावना एवं कार्यों के प्रति सहयोगात्मक दृष्टिकोण का विकास हुआ है। वैश्वीकरण से जातिवादक की ऐसी संस्कृति ने जन्म लिया है जिसके परिणामस्वरूप इन जातियों के जीवन स्तर में सुधार आया है। शिक्षा के प्रति जागरूकता बढ़ी है। स्वास्थ्य, रोजगार की स्थितियों में सुधार हुआ है, आर्थिक सुदृढ़ता बढ़ी है। इनके अतिरिक्त जातीय समूहों में वैचारिक परिवर्तन हुआ है, फलतः राजनीतिक शक्ति ऐसे समूहों के पास पहुँची है जो अब तक इनसे वंचित थे। अमरीकी लेखकों रूडोल्फ एण्ड रूडोल्फ के अनुसार **''जाति व्यवस्था ने जातियों के राजनीतिकरण में सहयोग देकर परम्परावादी व्यवस्था को आधुनिकता के साँचे में ढालने का कार्य किया है।''** रजनी कोठारी के अनुसार, जाति व्यवस्था आधुनिकीकरण और सामाजिक परिवर्तन में बाधा नहीं डालती बल्कि इसको बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। शिक्षा, शहरीकरण, औद्योगीकरण व आधुनिकीकरण से जातियों में एकीकरण की भावना को बल मिला है व उनकी राजनीतिक भूमिका मिलीं।

जाति का नकारात्मक स्वरूप

जातिवाद की सकारात्कता के साथ इसके नकारात्मक स्वरूप की अनदेखा नहीं किया जा सकता। आज जातिवाद ने जातीय कट्टरता के भाव को जन्म दिया है। आरक्षण व्यवस्था ने जातिगत भेदों को गहरा कर समाज में असमानता के भाव को उत्पन्न किया है। फलतः जातीय समूहों में विषमता बढ़ी है। समाज में आर्थिक प्रतिद्वंद्विता पनपी है, – समृद्ध व धनिक जातीय समूहों का राजनीतिक शक्तियों पर नियंत्रण बढ़ा है तथा निन जातियों का प्रतिकार हुआ है। जातीय कट्टरता से वैमनस्य, आपसी टकराव व जातीय हिंसा को बढ़ावा मिला है। कुछ राज्यों में तो जातियाँ अपराधी गिरोहों के साथ जुड़ी हुई दलीय राजनीति का हिस्सा बन चुकी हैं। आज सत्ता का नकारात्मक स्वरूप दिखाई देता है। संविधान द्वारा प्रदत्त आरक्षण प्रणाली ने जातिवाद का ऐसा विषाक्त बीजारोपण किया है जिसके परिणामस्वरूप राज्य सरकारों द्वारा अपने राजनीतिक स्वार्थों हेतु 'न्यायपालिका की अवमानना' तक भी की जा रही है जो निःसंदेह लोकतंत्र हेतु चिंताजनक है। इस संदर्भ में समाजशास्त्री एम.एन. श्रीनिवासन का मानना है कि ''परम्परावादी जाति व्यवस्था ने प्रगतिशील व आधुनिक राजनीतिक व्यवस्था को इस तरह प्रभावित किया है कि ये राजनीतिक संस्थायें अपने मूल रूप में कार्य करने में समर्थ नहीं रही है। आज जातिवादी तत्व अपनी सीमाओं को लांघकर राजनीति का मुख्य निर्धारक तत्व बन गया है तकि अन्य जातियों के साथ टकराव की प्रेरणा दे रहा है।''

भारतीय लोकतन्त्र में जातिवाद कैसे समाप्त हो ?

- पिछड़े वर्गों को आरक्षण मूलतः आर्थिक आधार पर दिया जाये।
- सत्ता प्राप्ति का माध्यम 'जातिगतवोट बैंक' न हो।
- जातिगत राजनीति को दूर करने के प्रयास हों। इस हेतु आज समाज को स्वयं जागरूक होने की आवश्यकता है, उनमें व्यष्टि की बजाय समष्टि का भाव जाग्रत होना जरूरी है।
- धर्म, नस्ल, संस्कृति, वंश आदि का भाव नैतिक शिक्षा के माध्यम से सकारात्क बनाया जाना चाहिये तथा जातिगत संकीर्ण विचारों से ऊपर उठकर संपूर्ण राष्ट्र के हित का भाव जगाया जाये।
- पहले राष्ट्र, फिर समाज व परिवार तत्पश्चात् स्वयं का भाव प्रत्येक व्यक्ति में जाग्रत करना आवश्यक है।

➢ लैंगिक भेद को भी समाप्त किया जाना चाहिये। स्त्री व पुरूष की पहचान एक मानव व नागरिक के रूप में होनी चाहिए।

➢ जनता ऐसे योग्य व्यक्तियों को ही प्रतिनिधि बनाकर भेजे जो लोकतांत्रिक भावना से कार्य करे एवं लोकतंत्र की जड़ को मजबूत कर सकें।

➢ राजनीति दल जनता के सम्मुख 'विकासोन्मुख आर्थिक कार्यक्रम' प्रस्तुत करें।

➢ जाति की स्वस्थ व उदारवादी संपर्क सूत्र प्रदान करने की भूमिका, जो भारतीय लोकतंत्र से लुप्त होती जा रही है, को पुनः विकसित किया जाये। इसके लिए आवश्यक है कि जाति की भूमिका को मर्यादित कर, इसे रचनात्मक दिशा प्रदान की जाये।

भारत में क्षेत्रीयतावाद

क्षेत्रीयतावाद आज भारत में राजनीतिक व सामाजिक जीवन में अत्यन्त व्यापक घटना है और निकट भविष्य में भारतीय राजनीति में इस प्रवृत्ति से मुक्ति के कोइ चिन्ह नहीं दिखाई दे रहे हैं। डॉ. इकबाल नारायण के शब्दों में, **"क्षेत्रवाद की प्रक्रिया कई आयामों वाली, एक अत्यन्त जटिल एवं मिश्रित व्यवस्था है जो एक साथ ही एक समय में भौगोलिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक एवं मनोवैज्ञानिक रूप लिए हुए है।"** उन्होंने भारत में क्षेत्रवाद के उदय को स्पष्ट करते हुए लिखा क्षेत्रवाद के उदय की जड़ें नागरिकों के मस्तिष्क में है। हर व्यक्ति किसी न किसी रूप में दोहरे व्यक्तित्व को प्रस्तुत करता है और उसमें उपराष्ट्रवादी और राष्ट्रवादी दोनों ही प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं। उपराष्ट्रवादी प्रवृत्ति स्वाभाविक रूप से राष्ट्रवादी प्रवृत्ति से पहले आती है। भारत की राजनैतिक व्यवस्था और विकास की प्रक्रिया में यह एक अपरिहार्य तथ्य है। कई बार यह प्रक्रिया अत्यन्त गंभीर रूप धारण कर लेती है और इसका प्रयोग पृथक्तावादी अथवा देश के अहित में किया जाने लगता है।

भारतीय राजनीति में क्षेत्रीयतावाद की प्रकृति तथा भूमिका का विवेचन इस प्रकार है

1. दबाव की प्रक्रिया के रूप में क्षेत्रवाद।
2. पृथक्तावादी या आतंकवादी रूप में क्षेत्रवाद।

(1) दबाव की प्रक्रिया के रूप में क्षेत्रवाद

यह क्षेत्रवाद अपने सामान्य रूप से दबाव की प्रक्रिया के रूप में रहता है। इसके अंतर्गत किसी क्षेत्र या समुदाय विशेष के लोग आर्थिक सुविधाएँ प्राप्त करने के लिए दबाव डालने लगते हैं। यहाँ तक यह क्षेत्रवाद राजनीतिक तथा आर्थिक सत्ता में भागीदारी

पाने के एक साधन के रूप में रहता है जिसे खतरनाक नहीं कहा जा सकता है। यह सामान्यतः अलगाववादी नहीं हेाता है। **डॉ. रशीउद्दीन खां** ने क्षेत्रवाद के सकारात्मक पक्ष की चर्चा करते हुए अपने लेख 'द **रीजनल डाइमेन्शन**' में लिखा है कि यह धारणा गलत साबित हुई है कि क्षेत्रीयता के कारण भारतीय संघ छिन्न–भिन्न हो जाएगा। **मोरिस जोन्स** ने लिख है कि ''यह मत अधिक सही साबित हुआ है कि क्षेत्रीयता या उपराष्ट्रवाद में सहअस्तित्व संभव है।''

1. क्षेत्रवाद क्षेत्रीय विकास में सहयोगी की भूमिका में

क्षेत्रवाद ने भारत के विकास को गति प्रदान की है। अनेक ऐसी योजनाएँ और कार्यक्रम हैं जो शायद धीमें पड़े हुए क्षेत्रीय दबावों के कारण तीव्र हुए हैं। क्षेत्रवादी नेतृत्व ने सत्ता में रहकर अपने दावों को उचित साबित करने के उद्देश्य से अपने राज्यों के विकास के लिए विशेष प्रयत्न किए हैं। इन राज्यों के विकास से देश को भी लाभ होता है तमिलनाडु, पंजाब और हरियाणा में विकास की गति इसका प्रमाण है।

2. पूर्ण या पृथक् राज्यस्थ की माँग के रूप में क्षेत्रवाद

भारत में क्षेत्रीयता की प्रवृत्ति की एक पृथक् भूमिका राज्स्व की माँग की जा रही है, जिसके कारण आंदोलनों के द्वारा महाराष्ट्र, गुजरात और पंजाबी सूबे के पृथक राज्यों का निर्माण हुआ। असम की गारो, खासी, जेन्तिया जातियों के पृथक् राज्यस्व की माँग पर जनवरी, 1972 में मेघालय राज्य की स्थापना हुई। इसी प्रकार सन् 1970 में हिमाचल प्रदेश और सन् 1972 में त्रिपुरा और मणिपुर प्रदेशों में पूर्ण राज्यस्व की माँग के आंदोलन चले और जिन्हें स्वीकार कर लिया गया। इसी कड़ी के अंतर्गत सन् 1975 में सिक्किम को, सन् 1987 में मिजोरम और अरूणाचल प्रदेश तथा गोवा को पूर्ण राज्य का दर्जा दिया गया तथा नवम्बर, 2000 मं झारखण्ड, उत्तराखण्ड तथा छत्तीसगढ़ राज्यों का निर्माण हुआ।

3. अंतर्राज्यीय विवाद के रूप में क्षेत्रवाद

दबाव की प्रक्रिया की भूमिका में क्षेत्रीयता का एक अन्य रूप अंतर्राज्यीय विवादों के रूप में सामने आया है। महाराष्ट्र और मैसूर के बीच बेलगाँव और आस–पस के क्षेत्रों के संबंध में विवाद है जिसके कारण अनेक बार हिंसक आंदोलन हो चुके हैं। चण्डीगढ़ का मामला पंजाब और हरियाणा के मध्य उग्र मतभेद का कारण बना हुआ है। नदियों के पानी और विद्युत के संबंध में भी राज्यों में मतभेद है।

4. क्षेत्रीय संगठन के रूप में क्षेत्रवाद

क्षेत्रवाद का एक अन्य स्वरूप क्षेत्रीय संगठन का है। महाराष्ट्र में शिवसेना, असम में 'लचित सेना' जैसे संगठन कट्टर क्षेत्रीयता में विश्वास करते हैं तथा अपने राज्यों से अन्य राज्यों के निवासियों को बाहर निकालने या उनको नौकरियों आदि की सुविधाओं से वंचित करने का आंदोलन चलाते हैं। असम आर मणिपुर में अनेक बार उत्तर भारत के लोगों के विरूद्ध हिंसात्मक कार्यवाहियाँ की गई हैं। तमिलनाडु में भी भाषा के प्रश्न पर उत्तर भारत के लोगों के विरूद्ध ऐसी ही घटनाएँ घटित होती रहती हैं। ये घटनाएँ कभी–कभी हिंसात्मक रूप भी धारण कर लेती है।

(2) पृथक्तावादी या आतंकवादी रूप में क्षेत्रवाद

क्षेत्रवाद का सबसे गंभीर परिणाम तब सामने आता है जब किसी राज्य का कोई भाग या क्षेत्र पृथक होने की माँग करता है। भारत में भाषायी, जातीय, आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक इत्यादि कारणों से समय–समय पर पृथक राज्यों के गठन की माँग की गई है। संघ से पृथक होने की इस माँग ने अनेक समस्याएँ उत्पन्न की हैं –

1. पंजाब में खालिस्तान की माँग

अकाली दल ने स्वतंत्रता से पूर्व मास्टर तारासिंह के नेतृत्व में पृथक् सिक्ख राज्य की माँग की। सन् 1950 से 1969 के दौरान पुनः पृथक् सिखिस्तान की माँग की गई। डॉ. जगजीत सिह के नेतृत्व में अकाली दल ने खालिस्तान की माँग के लिए आंदोलन संचालित किया गया। मार्च, 2007 मं पंजाब में अकाली दल भाजपा गठबंधन सरकार के नेता प्रभ्काश सिंह बादल के नेतृत्व में पंजाब सरकार का गठन किया जो विवाद में रहते हुए समस्या का समाधान करने में लगी हैं।

2. द्रविड़वाद की माँग

स्वतंत्रता के पश्चात् सर्वप्रथम सन् 1950 में तमिलनाडु के राजनीतिक एवं द्रविड़ मुनेत्र कड़गम ने मद्रास राज्य को भारतीय संघ से विलग करने की माँग की थी। इस माँग के तहत भारतीय संघ से अलग कर एक 'द्रविड़िस्थान' राज्य की माँग की गई। जिसमें मद्रास, आंध्रप्रदेश, केरल एवं मैसूर राज्य शामिल थे। इस तरह की विघटनकारी माँगों को रेाकने के लिए संविधान के 16वें संशोधन द्वारा अक्टूबर, 1963 में ऐसे कानून के निर्माण का अधिकार दिया गया जिसके द्वारा भारत की सम्प्रभुत और अखण्डता को

चुनौती देने वाले व्यक्तियों को दण्डित किया जा सके। इसके साथ ही संसद अथवा राज्य विधानमंडलों के चुनाव में भाग लेने वाले उम्मीदवारों के लिए यह आवश्यक कर दिया गया कि संविधान के प्रति निष्ठा की तथा देश की प्रभुसत्ता और अखण्डता की रक्षा की वे शपथ लें।

3. नागा व मीजों राज्य की माँग

उत्तर पूर्व में नागा एवं मीजो द्वारा भी भारतीय संघ से पृथक् होने की माँग की गई। सन् 1962 में 13वें संविधान संशोधन द्वारा नागालैण्ड को भारतीय संघ का पूर्ण राज्य तथा सन् 1985 में मिजोरम को पूर्ण राज्य का दर्जा दिया गया।

4. स्वतंत्र गोरखालैण्ड की माँग

सन् 1986 से ही पश्चिम बंगाल के पहाड़ी क्षेत्र के लोगों ने स्वतंत्र गोरखालैण्ड की माँग प्रारंभ की है। गोरखा मुक्ति मोर्चा नामक संगठन लगातार इस माँग को बढ़ावा दे रहा है। संगठन का नेतृत्व सुभाष घीसिंग के द्वारा किया जा रहा है।

5. पृथक् तेलंगाना की माँग

सन् 1960 के दशक से ही आंध्रप्रदेश के तेलंगाना क्षेत्र को पृथक् राज्य बनाने की माँग की जाती रही है। यहाँ रहने वाले लोगों का कहना है कि तेलंगाना क्षेत्र का समुचित आर्थिक विकास नहीं किया जा रहा है। अतः ये लोग पृथक् तेलंगाना नामक राज्य का गठन करना चाहते हैं।

6. जम्मू कश्मीर की माँग

आज स्वतंत्र कश्मीर की माँग निरन्तर बढ़ती जा रही है। कश्मीरियों के मन में यह आशंका भर गई है कि यह क्षेत्र भारत के अधीन असुरक्षित है। यहाँ आतंकवाद के सहारे स्वतंत्र होने की माँग दोहरायी जाती रही है। पाकिस्तान लगातार स्वतंत्र कश्मीर की माँग कर रहा है। यद्यपि कश्मीर की विकट परिस्थितियों के लिए पाकिस्तान तो दोषी है, परन्तु साथ ही कश्मीर में रहने वाले लोगों में भी यह भावना भर गई है कि कश्मीर के स्वतंत्र होने में ही उनका हित है।

भारत में क्षेत्रीयतावाद को प्रोत्साहित करने वाले प्रमुख तत्व

क्षेत्रवाद आज भारत के सामाजिक व राजनैतिक जीवन में अत्यन्त व्यापक घटना है। डॉ. इकबाल नारायण ने भारत के क्षेत्रवाद को अनेक आयामों वाली मिश्रित धारणा बताया है। भारत में क्षेत्रवाद को प्रोत्साहित करने वाले प्रमुख तत्व निम्नलिखित है :–

(1.) भौगोलिक–सांस्कृतिक कारण

भारत में भी जनसंख्या क अधिकांश भाग की समाजीकरण की प्रक्रिया में परम्परागत ढाँचे में कोई सांस्कृतिक बदलाव नहीं आया है। परिणामस्वरूप धर्म, जाति, भाषा तथा अन्य सामुदायिक संगठनों के प्रति निष्ठा और कर्तव्य के बारे में स्थापित मूलय जन समुदाय के समाजिक राजनैतिक व्यवहार को प्रभावित करतें हैं और क्षेत्रीय भावना को बनाने में योगदान देते हैं।

1. भूगोल तथा इतिहास

भारत को भौगोलिक दृष्टि से क्षेत्रों में बाँटने वाला प्रथम तत्व उसकी प्राकृतिक सीमाएँ हैं। इन सीमाओं के कारण देश के अनेक भाग एक–दूसरे से लगभग अछूते रहे हैं तथा राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक क्षेत्र में विकास एक तरह का तथा साथ–साथ परम्परा सम्बद्ध न होकर, अलग–अलग रूप में स्वतंत्र ढंग से हुआ है। इन क्षेत्रों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, सांस्कृतिक विरासत, लोक परम्पराएँ, सामाजिक मिथक और प्रतीत इन क्षेत्रों के क्षेत्रवाद के अस्तित्व को बनाये रखते हैं। तमिलनाडु में द्रमुक के विकास की कहानी तथा असम की गण परिषद् के विकास को कहानी अदि इसी तत्व की द्योतक है।

2. धर्म

धर्म पृथक्तावादी प्रक्रियाओं को बढ़ावा देने का सबसे सरल साधन है। भारत में वर्ग एवं आर्थिक संबंधों का अभाव है। इसलिए यहाँ धर्म और अधिक शक्तिशाली है। यहाँ कुछ क्षेत्रों में अल्पसंख्यक धार्मिक सम्प्रदायों का केन्द्रीकरण है। यह केन्द्रीकरण उस क्षेत्र विशेष में सत्ता प्राप्ति की आकांक्षा को बलवती करता है। इस सत्ता प्राप्ति की आकांक्षा की पूर्ति के लिए यह समुदाय धर्म को साधन के रूप में अपनाने लगता है। उदाहरण के लिए पंजाब में सिक्खों का केन्द्रीकरण, जम्मू एवं कश्मीर में मुसलमानों का और केरल में मुसलमान तथा ईसाइयें का केन्द्रीकरण क्षेत्रवाद की प्रक्रिया को महत्वपूर्ण आधार प्रदान करता है।

3. भाषा

भारत में 22 प्रमुख भाषाएँ हैं, परन्तु कोई भी एक भाषा जनसंख्या के आधे से अधिक भाग द्वारा नहीं बोली जाती। भाषा की विविधता अत्यधिक सुदृढ़ होती है। यदि किसी क्षेत्र में भाषा के आधार पर एकरूपता पाई जाती है तो वहाँ सकारात्मक और नकारात्मक दोनों ही अर्थों में क्षेत्रवाद अधिक सुदृढ़ होता है। सकारात्मक रूप में यह एकता की शक्ति प्रदान करती है और नकारात्मक रूप में भावुक आवेश तथा उन्माद पैदा करती है। तमिलनाडु तथा बंगाल का क्षेत्रवाद इसके प्रमुख उदाहरण हैं।

4. जाति

लोगों को क्षेत्रीय आधार पर संगठित करने का एक अन्य प्रमुख आधार जाति है। जब जाति आर्थिक हित या भाषायी समुदाय का धर्म के साथ जुड़ जाता है तो वहाँ क्षेत्रवाद को प्रबल बनाने में काफी सहायक होती है। उदाहरण के लिए महाराष्ट्र में मराठा जाति आर्थिक हितों के साथ जुड़ गई है, तो पंजाब में सिख धर्म और जाट जाति का समन्वय हो गया है तथा तमिलनाडु में तमिल भाषा के साथ गैर ब्राह्मण जातियों ने जुड़कर एक प्रबल क्षेत्रवाद को हमारे सामने रख छोड़ा है। रजनी कोठारी ने लिखा है कि ''यद्यपि जाति व्यवस्था क्षेत्रवाद के लिए अपने आप में बहुत महत्वपूर्ण तत्व नहीं है, परन्तु जहाँ यह आर्थिक हितों (जैसे महाराष्ट्र में मराठा जाति), भाषायी समुदायों (तमिलनाडु में तमिल भाषी) के साथ जुड़ी हों, वहाँ यह क्षेत्रवाद को प्रबल बनाने में काफी सहायक होती है।''

5. विशिष्ट वर्ग और साधारण जन के मध्य अंतर

मायनर वीनर ने क्षेत्रवाद को विकसित करने वाले इस तत्व की ओर ध्यान दिलाया है। मायनर वीनर ने अपने लेख "India : Two Political Culture' में लिखा है कि स्वतंत्रता के पश्चात् भारत में दो प्रकार की राजनीतिक संस्कृति विकसित हो रही है जो समाज के विभिन्न स्तरों में सक्रिय है। इनमें से एक संस्कृति जिला स्तर पर पाई जाती है। यह ग्रामीण तथा शहरी विस्तारशील राजनतिक प्रक्रिया है जो राज्य विधानसभाओं, राज्य सरकारों और राज्य स्तर पर प्रशासन में पहुँच रही है। दूसरी राजनीतिक संस्कृति का प्रभुत्व नई दिल्ली में है। राष्ट्रीय स्तर के अनेक नेता, नियोजक एवं मुख्य प्रशासनिक अधिकारी इसके प्रेरक हैं। इन दोनों संस्कृतियों में मतभेद क्षेत्रवाद को बढ़ावा देता है।

केन्द्रीय स्तर के भागीदारी द्वारा जब राज्य स्तर पर अपनी उत्तसमता थोपने के प्रयत्न किए जाते हैं तो ये प्रयत्न अपनी प्रतिक्रिया के रूप में क्षेत्रवाद को उकसाते हैं।

(2) आर्थिक कारण

भारत में क्षेत्रवादक को बढ़ावा देने में आर्थिक और क्षेत्रीय आधार पर विकास, विषमताओं और असंतुलन का विशेष योगदान रहा है। स्वतंत्रता के पश्चात् विकास की धीमी गति, विकास के लिए अपनाई गई नीति से उत्पन्न विरोधाभास ने क्षेत्रवाद को उद्दीप्त किया है।

1. विकास की धीमी गति

स्वतंत्रता के पश्चात् शासन द्वारा लोगों की उन आकांक्षाओं को पूरा नहीं किया जा सका है, जिनको राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान जनता में प्रचलित किया गया था। अभी भी भारत आर्थिक क्षेत्र में अविकसित है। स्रोत कम है और माँगें बढ़ रही हैं। जनसंख्या वृद्धि इस खाई को और बढ़ा रही है। इसका परिणाम यह हुआ है कि परस्पर प्रतिस्पर्धा बढ़ रही है। यह प्रतिस्पर्धा व्यक्तिगत प्रतिस्पर्धा से आगे बढ़कर वर्गीय और क्षेत्रीय रूप धारण कर रही है। दूसरे, भारत के कुछ राज्यों के कुछ क्षेत्रों में आर्थिक विकास तीव्र गति से हुआ है, तो कुछ क्षेत्र आर्थिक विकास की दृष्टि से पिछड़े हुए हैं। इन पिछड़े हुए क्षेत्रों में असंतोष व्याप्त हुआ है तथा उनमें क्षेत्रवाद की भावना पनपी है।

2. विकास नीति

भारत विकास की प्रक्रिया एक मिश्रित तरीके से चल रही है। किन्हीं क्षेत्रों में विकास के अगले चरण के प्रभाव सामने आ रहे हैं तो दूसरे क्षेत्रों में वह पिछड़ रहा है। उदाहरण के लिए स्वास्थ्य व आयुर्विज्ञान के क्षेत्र में अत्यंत विकसित जानकारी अपनाने व प्रयोग करने से मृत्यु दर कम हुई है, जिससे जनसंख्या में बहुत वृद्धि हुई है तो दूसरी तरफ जनसंख्या की वृद्धि के अनुपात में अन्न तथा रोजगार के अवसरों में वृद्धि नहीं हुई है। समाजीकरण में आधुनिक मूल्यों के पदार्पण न कर पाने के कारण परिवार नियोजन के प्रति भी उपेक्षा बनी रही है। फलस्वरूप प्राप्त सुविधाओं और माँगों में अंतर बढ़ता जा रहा है। यह अंतर एक तरफ क्षेत्रीय प्रतिस्पर्द्धा को पैदा कर रहा है, जो क्षेत्रीय स्वायत्तता की माँग करने लगता है तथा दूसरी ओर अविकसित क्षेत्रों के लोग केन्द्र द्वारा उपेक्षा की भावना से उत्तेजित होकर अधिक सहायता के लिए क्षेत्रीय आधार पर संगठित हो रहे हैं, जैसे तेलंगाना का क्षेत्रवाद।

3. विकास राशि का दुरूपयोग

जहाँ भ्रष्टाचार और राज्य सरकार की विकास के प्रति उदासीनता, उनकी यथास्थितिवाद की नीति तथा अदूरदर्शिता से विकास की राशि का सदुपयोग नहीं हो पाता है। परिणामस्वरूप उस राज्य में क्षेत्रवाद, अलगाववाद और आतंकवाद के विकास को प्रश्रय मिलता है।

4. क्षेत्रीय असंतुलन

भारत में क्षेत्रीय असंतुलन और असमानताओं का बना रहना भी क्षेत्रीयता को उद्दीप्त करता है। भारत में पर्याप्त क्षेत्रीय असंतुलन को दूर करने के संकल्प को दोहराया जा रहा है, कुछ प्रयास भी किए जा रहे हैं, लेकिन कही ंकहीं यह क्षेत्रीय असंतुलन बढ़ भी रहा है। इसके दो प्रमुख कारण बताए जा सकते हैं– प्रथम उदारवादी लोकतांत्रिक प्रणाली में स्रोतों का बंटवारा, मत शक्ति, राजनैतिक प्रभाव और दबाव के अंतर्गत होना। विकसित क्षेत्र अपनी क्षमता के आधार पर अब भी स्रोतों का एक बड़ा भाग प्राप्त कर रहे हैं। दूसरा कारण है उत्पादन में वृद्धि की गति में कमी। इसी कमी के कारण माँग और पूर्ति का अंतर बढ़ रहा है। इस उत्पादन वृद्धि की तुरन्त पूर्ति की आवश्यकताओं के कारण लम्बी अवधि की योनायें छूट रही हैं और जहाँ शीघ्र उत्पादन वृद्धि हो सकती है।

5. आधुनिकीकरण

आधुनिकीकरण में सामाजिक परिवर्तन और राजनीतिक गतिशीलता की क्रियाएँ सम्मिलित होती है। इन क्रियाओं ने साम्प्रदायिक प्रतिस्पर्द्धाओं को तीव्र किया है। उदाहरण के लिए शिक्षा, संचार–व्यवस्था में सुधार, यातायात सुविधाएँ और आर्थिक साधनों से नागरिकों में राष्ट्रीय जागरूकता आई है। इसके साथ ही इन लोगों में नागरिकों, समुदायों, क्षेत्रीय और वर्गों में उपस्थित असमानता का ज्ञान भी हुआ है। आधुनिकीकरण से आकांक्षाएँ बढ़ी हैं, लेकिन इन आकांक्षाओं के पूरा न होने पर उनमें निराशा आई है। फलस्वरूप ये लोग क्षेत्रीयता की तरह मुड़े हैं। असमानताओं की प्रतिस्पर्धा में क्षेत्रीय, भाषाई, धार्मिक और सांस्कृतिक वर्ग अधिक सचेत हो जाते हैं और परिणाम होता है पृथक्तावाद एवं संकीर्ण आंदोलनों का जन्म।

(3) राजनीतिक कारण

यद्यपि राजनीति क्षेत्रवाद को जन्म नहीं देती है लेकिन इस प्रक्रिया में प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष सहयोग अवश्य देती है। क्षेत्रवाद को प्रोत्साहन देने वाले प्रमुख राजनीतिक कारण इस प्रकार है '–

1. स्थानीय राजनीतिक नेतृत्व का संकीर्ण दृष्टिकोण

भारत में स्वतंत्रता के बाद राजनीति में स्थानीय स्तर पर कम शिक्षित, परम्परावादी तथा सीमित हित के दृष्टिकोण रखने वाले लोग सत्ता में आए। इन लोगों ने अपनी राजनैतिक महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए जाति, धम्र या क्षेत्रीय समुदायों को अधिक उपयोगी पाया। भारतीय नेताओं में यह प्रवृत्ति राष्ट्रीय स्तर के नेताओं में भी समय–समय पर देखने को मिलती है।

2. सत्ता प्राप्ति के लिए राजनैतिक दलों के आंतरिक संघर्ष

राष्ट्रीय स्तर के राजनैतिक दलों के आंतरिक संघर्ष के पीछे भी यही प्रवृत्ति काम कर रही होती है। उदाहरण के लिए कांग्रेस के आंतरिक मतभेद ने तेलंगाना को नव जीवन प्रदान किया। महाराष्ट्र में शिवसेना की सफलता के पीछे भी कांग्रेस का आंतरिक संघर्ष है।

3. विरोधी दलों की क्षेत्रवाद की राजनीति

भारत में विरोधी दलों की राजनीति ने भी क्षेत्रवाद को बढ़ाने में सहयोग दिया है। उदाहरण के लिए, साम्यवादी दल द्वारा बंगाल में क्षेत्रवाद का समर्थन करना। प्रादेशिक दलों, जैसे– डी.एम.के., अकाली दल, तेलगूदेशम, नेशनल कांफ्रेंस, असम गण परिषद, शिवसेना आदि ने भी राजनीतिक कारणों से प्रादेशिकता (क्षेत्रीयता) की अग्नि प्रज्वलित की है। इन दलों के नेता यह सोचते हैं कि प्रादेशिकता की भावना बढ़ाकर अपनी राजनीतिक महत्वाकांक्षाएँ पूरी की जा सकती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि भारत में दलीय राजनीति ने भी क्षेत्रवाद को बढ़ावा दिया है।

(4) मनोवैज्ञानिक कारण

क्षेत्रवाद के उदय की जड़ें नागरिकों के मस्तिष्क में है। हर व्यक्ति में उपराष्ट्रवादी और राष्ट्रवादी दोनों ही प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं। डॅ. इकबाल नारायण का कहना है कि

उपराष्ट्रवादी प्रवृत्ति स्वाभाविक रूप से राष्ट्रवादी प्रवृत्ति से पहले आती है। भारत में इस उपराष्ट्रवादी प्रवृत्ति के विकसित होने के अनेक कारण रहे हैं.....

1. एकीकरण और राजनैतिक विकेन्द्रीकरण की असफलता

राष्ट्रीय एकीकरण और राजनैतिक विकेन्द्रीकरण की समस्या को सुलझाने में असफल रहा। इससे विभिन्न सांस्कृतिक और अल्पसंख्यक समुदायों में संशय उत्पन्न हुआ। इस संशय ने व्यक्तियों की उपराष्ट्रवादी प्रवृत्ति को बढ़ाया है।

2. अत्यधिक केन्द्रीकरण

स्वतंत्रता से पूर्व राष्ट्रीय आंदोलन में राष्ट्रीय नेताओं ने संघीय शासन प्रणाली राज्यों की स्वायत्तता तथा राजनैतिक विकेन्द्रीकरण तथा भाषायी आधार पर गठन की बात कहीं थी, लेकिन विभाजन से भयभीत नेताओं के राष्ट्रीय नेतृत्व में सत्ता के विकेन्द्रीकरण के प्रति अधिक रूचि पैदा हो गई। संविधन में भी केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति को अधिक महत्व दिया गया। बाद में अनावश्यक कारणों से केन्द्र द्वारा राज्यों के सीमित अधिकारों में भी हस्तक्षेप किया जाने लगा। इससे अल्पसंख्यक समुदाय, विशेष भाषायी समुदाय के मन में यह संशय पैदा हो गया कि स्वतंत्र भरत में अनेक सांस्कृतिक अस्तित्व को समान करने के प्रयास किए जा रहे हैं।

इस प्रकार भारत में क्षेत्रवाद–भौगोलिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, आर्थिक एवं मनोवैज्ञानिक तत्वों का एक जटिल मिश्रण है।

क्षेत्रीयता के दुष्परिणाम

1. विभिन्न क्षेत्रों के बीच संघर्ष और तनाव

क्षेत्रवाद के कारण विभिन्न क्षेत्रों के बीच आर्थिक, राजनीतिक और मनोवैज्ञानिक संघर्ष और तनाव दिन–प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है, क्योंकि इसके अनन्तर प्रत्येक क्षेत्र स्वार्थों को सर्वोच्च स्थान दे बैठता है और उसे यह चिंता नहीं होती कि उससे दूसरे क्षेत्रों को कितना नुकसान होगा।

2. राज्य तथा केन्द्रीय सरकार के बीच संबंधों का विकृत होना

भारत में क्षेत्रीयता के कारण केन्द्रीय सरकार तथा राज्य सरकार के बीच का संबंध कभी–कभी अत्यन्त कटु रूप धारण कर लेता है। केन्द्रीय सरकार जिस क्षेत्र की

तरफ या जिस राज्य की तरफ थोड़ा–सा झुक गई, वहीं विवाद बढ़ जाता है और राज्य सरकारों का पारस्परिक संबंध सौहार्दपूर्ण नहीं रह पाता है।

3. स्वार्थी नेतृत्व तथा संगठन का विकास

क्षेत्रीयता के दुष्परिणामस्वरूप अलग–अलग क्षेत्र में कुछ इस प्रकार के नेतृत्व व संगठनों का विकास हो जाता है जो कि जनता की भावनाओं को उभार कर अपने संकीर्ण स्वार्थों की पूर्ति करना चाहते हैं। ये नेतागण कभी तो भाषा के प्रश्न को लेकर हंगामा मचाते हैं और कभी केन्द्रीय सरकार के पक्षपातपूर्ण व्यवहार के विरूद्ध नारा लगाने के लिए सामने आ खड़े होते हैं, चाहे इनमें से कोई भी समस्या वास्तविक हो या केवल काल्पनिक।

4. भाषा की समस्या का अधिक जटिल होना

क्षेत्रीयता का एक अन्य दुष्परिणाम यह होता है कि क्षेत्रीय वफादारी भाषा की समस्या को सुलझाने में सहायक होने के स्थान पर इसे और भी जटिल बनाने में मदद करती है, क्योंकि प्रादेशिक भाषा के प्रति संकीर्णता की हद तक लगाव भाषायी कटुता को बढ़ाता है। यह भाषायी कटुता जनकल्याण, सहिष्णुता तथा राष्ट्रीय प्रगति के दृष्टिकोण के विकस में बाधा डालती है।

5. राष्ट्रीय एकता को चुनौती

संकीर्ण क्षेत्रीयता राष्ट्रीय एकता के लिए चुनौती बन जाती है। विभिन्न क्षेत्रों के बीच होने वाले तनाव व संघर्ष राष्ट्रीय एकता की समस्त धारणाओं और भावनाओं पर तुषारापात करते हैं।

क्षेत्रवाद को रोकने के सुझाव

1. देश में आर्थिक समानता की स्थापना

क्षेत्रवाद की समस्या के समाधान हेतु आर्थिक समानता की स्थापना अति आवश्यक है। सरकार द्वारा यह प्रयत्न किया जाना चाहिए कि देश में आर्थिक असंतुलन कम से कम हो। देश का कोई भी एक भाग यदि अत्यधिक पिछड़ा हुआ है तो विभिन्न विकास योजनाओं के माध्यम से उसका समुचित विकास किया जाना चाहिए, जिससे क्षेत्रवाद की भावना पर अंकुश लगाया जा सके।

2. केन्द्र राज्य संबंधों का पुनर्सर्वेक्षण

क्षेत्रवाद की प्रवृत्ति को केन्द्र एवं राज्यों के मध्य उत्पन्न तनाव के रूप में देखा जा सकता है। यदि केन्द्र और राज्यों के मध्य तनाव को कम किया जाए तो क्षेत्रवाद पर नियंत्रण स्थापित किया जा सकता है। समय–समय पर केन्द्र–राज्य संबंधों की पुनर्व्याख्या के लिए विभिन्न आयोगों का गठन किया जाना चाहिए। केन्द्र द्वारा भी अनावश्य रूप से राज्यों में हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए ?

3. संविधान में आस्था

संविधान में नागरिकों की आस्था क्षेत्रीयवाद पर नियंत्रण का प्रभावी साधन है। संविधान सभी नागरिकों को समान बताता है। उसके अनुसार राज्य के लिए के लिए सभी धर्म समान है। अतः नागरिकों को भी सम्पूर्ण भारतवर्ष को अपना घर मानकर संविधान के प्रावधानों में विश्वास रखना चाहिए। प्रत्येक नागरिक को संविधान की प्रस्तावना में आस्था रखते हुए भाईचारे के साथ जीवन व्यतीत करना चाहिए। इसके अतिरिक्त सरकार की ओर से ऐसे प्रयास किए जाने चाहिए जिससे आम जनता में संविधान के प्रति आस्था जाग्रत हो।

4. भाषा की समस्या का समाधान

हिन्दी भाषा को सम्पर्क भाषा के रूप में स्थापित किया जाए, उसे किसी क्षेत्रीय समूह पर जबरदस्ती न लादा जाए। भाषा के दुरूपयोग को रोका जाए। भाषा संबंधी झगड़ों का शीघ्र ही कोई हल निकाला जाना चाहिए। क्षेत्रीय भाषाओं को भी समान रूप से महत्व दिया जाना चाहिए।

5. पंथ निरपेक्षता में विश्वास

आज भारत के अधिकांश क्षेत्र में लोगों में अपने धर्म (पंथ) के प्रति गहरी आस्था तथा दूसरे धर्मों के प्रति घृणा का भाव भरा हुआ है। धर्म के आधार पर लोग अपने को संघ से पृथक करने की माँग करते आ रहे हैं। अतः आम जन के विवेक में पंथ निरपेक्षता की भावना घर करले तो काफी हद तक क्षेत्रवाद की दूषित प्रवृत्ति पर अंकुश लगाया जा सकता है।

6. संचार साधनों का दुरूपयोग रोका जाए

संचार साधनों के दुरूपयोग को रोक कर भी क्षेत्रवाद को रोका जा सकता है। संचार के साधनों के माध्यम से जनता को शिक्षित एवं जागरूक बनाया जाना चाहिए। उनमें देशहित की भावना प्रबल की जानी चाहिए। उनमें देश के विभिन्न क्षेत्रों की संस्कृति एवं कला के सामान्य ज्ञान का बोध कराया जाए।

7. समानता के आधार पर औद्योगिक विकास

असमान औद्योगिक विकास भी क्षेत्रवाद को बढ़ावा देता है। देश के प्रत्येक भाग में समान औद्योगिक विकास किया जाना चाहिए। उन क्षेत्रों का विशेष ध्यान रखा जाए जो औद्योगिक दृष्टि से पिछड़े हुए हैं। सरकार द्वारा सभी क्षेत्रों, समुदायों को ध्यान में रखते हुए विकास कार्यक्रम को मूर्त रूप प्रदान किया जाना चाहिए।

8. नागरिकों में देशभक्ति की भावना का संचार

क्षेत्रवाद की प्रवृत्ति पर लगाम लगाने के लिए आवश्यक है कि देशवासियों को देशभक्ति का पाठ पढ़ाया जाए। उनमें देश के प्रति प्रेम एवं भक्ति भाव विकसित किया जाए। उन्हें राष्ट्र हित को महत्व देने के लिए प्रेरित किया जाए। हमेशा इस बात का प्रचार–प्रसार किया जाना चाहिए कि जो बात एकता व अखण्डता में है वह विघटन में नहीं।

साम्प्रदायिकता

साम्प्रदायिकता एक विचारधारा है जो यह बताती है कि समाज विभिन्न धार्मिक समुदायों में बँटा है, जिनके स्वार्थ एक–दूसरे से भिन्न है और इसी कारण उनमें कभी–कभी पारस्परिक विरोध भी होता है। एक समुदाय के सदस्य जो दूसरे समुदाय के सदस्यों और धर्म के विरूद्ध प्रतिरोध करते हैं उन्हें 'साम्प्रदायिक' कहा जाता है। यह विरोध किसी विशेष समुदाय पर मिथ्या आरोप लगाने, क्षति पहुँचाने, अपमानित करने तथा कभी–कभी जान से मार देने तक का भीभत्स रूप ले लेता है। भारत में इनका एक घिनौना रूप देखने को मिलता है। साम्प्रदायिकता की बढ़ती हुई इस प्रवृत्ति और उसके साथ जुड़ी हुई हिंसा ने धार्मिक अल्पसंख्यकों एवं नृजातीय समूहों में असुरक्षा की भावना को जन्म दिया है। इसी असुरक्षा का फायदा उठाकर कुछ लोग अपने निहित स्वार्थों की पूर्ति करते हैं एवं जब उन्हें यह लगता है कि उनके कार्य सिद्ध नहीं हो रहे हैं, तो वे एक राजनीतिक खेल खेलते हैं और अंततः उसे धार्मिक तत्वों से जोड़कर एक धार्मिक रंग

प्रदान करते हैं। इन व्यक्तियों के लिए भगवान और धर्म, उपकरण मात्र है, जिनका उपयोग वे समाज के 'शाही पराश्रयी' के रूप में विलासमय जीवन बिताने और अपने राजनीतिक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए करते हैं।

टी.के. ऊमन ने साम्प्रदायकता के छः प्रकार बतलाये हैं :–

1. अत्मसातीकरणवादी साम्प्रदायिकता,
2. कल्याणकारी साम्प्रदायिकता,
3. पलायनवादी साम्प्रदायिकता,
4. प्रतिशोधवादी साम्प्रदायिकता,
5. अलगाववादी साम्प्रदायिकता,
6. पार्थक्यवादी साम्प्रदायिकता।

आत्मसातीकरणवादी साम्प्रदायिकता वह है, जिसमें छोटे–छोटे धार्मिक समूहों का एकीकरण कर दिया जाता है। इस प्रकार की साम्प्रदायिकता यह दावा करती है कि जैन, बौद्ध, सिक्ख और जनजातियाँ हिन्दू हैं और ये हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 के अन्तर्गत ही आते हैं। **कल्याणकारी साम्प्रदायिकता** का लक्ष्य किसी विशेष समुदाय का कल्याण होता है, जिसे अन्तर्गत जीवन स्तर में सुधार, शिक्षा एवं स्वास्थ्य प्रबंध आदि कार्य सम्मिलित हैं। उदाहरण के लिए ईसाई संस्थाएँ ईसाइयों के लिए एवं पारसी समुदाय पारसियों के उत्थान के लिए कार्यरत रहते हैं। इस तरह के संस्थानों का उद्देश्य केवल अपने समुदाय के हित में काम करना होता है। **पलायनवादी साम्प्रदायिकता** वह है, जिसमें एक छोटा धार्मिक समुदाय अपने को राजनीति से अलग रखता है, जैसे बहाई समुदाय, जिसने अपने सदस्यों के लिए राजनीति में भाग लेना अवैध घोषित किया हुआ है। **प्रतिशोधपूर्ण साम्प्रदायिकता** दूसरे धार्मिक समुदायों के सदस्यों को हानि और चोट पहुँचाने का प्रयत्न करती है। पृथकतावादी या अलगाववादी साम्प्रदायिकता वह है, जिसमें एक धार्मिक समुदाय अपनी संस्कृति की विशेषता बनाये रखना चाहता है और अपने लिए एक अलग राज्य की माँग करता है। सिखों द्वारा की जाने वाली खालिस्तान की माँग इसी का ज्वलंत उदाहरण है।

भारत में अनेकवादी समुदाय हैं और अनेक धर्मावलंबी भी निवास करते हैं। ये धार्मिक समुदाय भी आपस में कई उपवर्गों में विभक्त हैं, जैसे– हिन्दू आर्य समाजी, शैव, सनातनी अैर वैष्णव में, मुसलमान शिया एवं सुन्नी में, ईसाई कैथेलिक एवं प्रोटेस्टेन्ट में।

लेकिन भारत में साम्प्रदायिकता का जो स्वरूप है, वह मुख्यतः हिन्दू–मुस्लिम साम्प्रदायिकता है एवं इसकी शुरूआत स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान हुई। यह अंग्रेजों की 'फूट डालो शासन करो की नीति' की उपज थी। उस समय राजनीतिक फायदे के लिए अपनाये गये तरीके ने एक गंभीर रूप से लिया है तथा आज साम्प्रदायिकता परिवर्तित सामाजिक एवं राजनीतिक वातावरण में चल रही है। 'साम्प्रदायिकता' की भावना से प्रेरित होकर जो हिंसात्मक कार्य संचालित किये जाते हैं, वे 'साम्प्रदायिक हिंसा' कहलाते हैं।

सामप्रदायिक हिंसा एक सामूहिक हिंसा है। जब समुदाय के लोगों का एक बड़ा भाग अपने सामूहिक लक्ष्यों की प्राप्ति में असफल हो जाता है, तो उनमें कुण्ठा और मोहभंग की भावनायें जाग्रत हो जाती है। यह सामूहिक कुण्ठा जिसे फायराबेंडस और नेसबोल्ड 'नियमित कुण्ठा' कहते हैं, सामूहिक हिंसा की जन्मदात्री है। विद्वानों ने साम्प्रदायिक हिंसा के लिए उत्तरदायी विभिन्न सिद्धांतों की व्याख्या की है। इससे संबंधित कई प्रकार के सिद्धांत हैं, जिनमें कुण्ठा, आक्रमण सिद्धान्त, विकृति सिद्धांत, अभिप्राय आरोपण सिद्धांत, व्यवस्थातनाव सिद्धांत, व्याधि का सिद्धांत, हिंसा की उपसंस्कृति के सिद्धांत। लेकिन ये सभी सिद्धान्त पूरी तरह से साम्प्रदायिक दंगों की सामूहिक हिंसा के तथ्यों को समझाने में सफल है। परन्तु सामाजिक बंधक की सिद्धान्त एवं ध्रुवीकरण और गुच्छ समूह के प्रभाव के सिद्धान्त को इसे समझने में महत्वपूर्ण माना गया है।

साम्प्रदायिक हिंसा के कारक

साम्प्रदायिक हिंसा की समस्या का विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न परिप्रेक्ष्य में अध्ययन किया है आर उसके होने के विभिन्न कारण बताये हैं। मार्क्सवादी विचारधारा साम्प्रदायिकता का संबंध आर्थिक वंचन और बाजार की ताकतों पर एकाधिकार नियंत्रण को प्राप्त करने के लिए धनवान और निर्धन के बीच वर्ग संघर्ष से बतलाती है। समाजशास्त्र इसे सामाजिक तनावों और सापेक्ष वंचनों से उत्पन्न हुई घटना कहते हैं। बहुकारक उपागम में दस प्रमुख कारक साम्प्रदायिकता के कारणों के बताये गये हैं, ये हैं सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक, कानूनी, मनोवैज्ञानिक, प्रशासनिक, ऐतिहासिक, स्थानीय और अंतर्राष्ट्रीय।

सामाजिक कारकों में सामाजिक पंरपराएँ जाति एवं वर्ग अहम, असमानता और धर्म पर आधारित सामाजिक स्तरीकरण सम्मिलित हैं। धार्मिक कारकों में धार्मिक संकीर्णता, मतान्धता, राजनीतिक लाभों के लिए धर्म का उपयोग और धार्मिक नेताओं की

साम्प्रदायिक विचारधारा सम्मिलित है। आर्थिक कारकों में आर्थिक शोषण और पक्षपात असंतुलित आर्थिक विकास प्रतिस्पर्धा का बाजार, श्रमिकों का विस्थापन आदि सम्मिलित है। कानूनी कारकों में सम्मिलित है– समान कानूनी संहिता, संविधान में कुछ समुदायों के लिए विशेष प्रावधान और रियासतें। आरक्षण नीति और विभिन्न समुदायों के लिए विशेष कानून मनोवैज्ञानिक कारकों में शामिल हैं। स्थानीय कारकों में सम्मिलित हैं– धार्मिक जुलूस, नारेबाजी, अफवाहें, जमीन के झगड़े, स्थानीय असामाजिक तत्वों और गुटों में प्रतिद्वंद्विता। अंतर्राष्ट्रीय कारकों में दूसरे देशों द्वारा दिये जा रहे प्रशिक्षण और वित्तीय सहायता देना आदि सम्मिलित है।

विभिन्न धार्मिक समुदायों के बीच सामन्जस्य एवं असुरक्षा की भावना मुख्य रूप से इसके लिए उत्तरदायी है। यह भावना सबसे ज्यादा मुसलमानों में दृष्टिगत हाती है। मुस्लिमों में यह भावना स्वतंत्रता आंदोलन के काल से ही नेताओं द्वारा भरी जा रही है, जिसमें उनका निहित स्वार्थ था। तत्कालीन परिवेश पर यदि गौर करें तो आज भी सरकारी सेवाओं में इनकी भागीदारी कम है। इस कारण से मुसलमानों में यह भावना जाग्रत हो गयी है कि उनके साथ भेदभाव हो रहा है और उन्हें सब क्षेत्रों में अवसरों से वंचित रखा जा रहा है। परन्तु तथ्यात्मक सत्यता यह है कि जो मुसलमान इस प्रकार की नौकरियों के लिए प्रतियोगिता में भाग लेते हैं, उनकी संख्या बहुत कम है, परन्तु उन्होंने अपने मन में एक कुण्ठा पाली है कि धार्मिक आधार पर भारत में उनके साथ भेदभाव होता है और यही कुण्ठा कभी–कभी साम्प्रदायिक दंगों के रूप में प्रकट होती है।

प्रेस और संचार माध्यम भी कभी–कभी अपने तरीके से साम्प्रदायिक तनावों को बढ़ाने में योगदान देते हैं। प्रेस की स्वतन्त्रता एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का डंका पीट कर ये खबरों को प्रस्तुत करते हैं तथा कई बार अखबार में छपी खबरें सुनी–सुनायी अफवाहों की गलत प्रस्तुत पर आधारित होती है। ये लोग खबरों से होने वाली परिणामों को भूल कर अपने अखबार की बिक्री बढ़ाने तथा चैनलों की रेटिंग बढ़ाने के चक्कर में सारी खबरों को प्रदर्शित करते हैं तथा जाने या अनजाने इस कारण लोगों की साम्प्रदायिक भावनाएँ जाग्रत हो जाती हैं, जिसकी परिणति साम्प्रदायिक दंगों के रूप में दृष्टिगत होती है।

इनके लिए कुछ हद तक सामाजिक कारक भी जिम्मेदार हैं। जैसे मुसलमानों द्वारा परिवार नियोजन के उपायों को नहीं अपनाना भी हिन्दुओं में संदेह और दुर्भावना

उत्पन्न करता है। उदाहरण के लिए सन् 1982 में विश्व हिन्दू परिषद ने महाराष्ट्र में, पुणे और शोलापुर में पर्चे बाँटे, जिसमें मुसलमानों द्वारा परिवार नियोजन कार्यक्रम को स्वीकार नहीं करने की और बहुविवाह प्रथा का पालन इस उद्देश्य से करने की कि जिससे उनकी जनसंख्या में कथित रूप से वृद्धि हो जाये और वे भारत में एक मुस्लिम सरकार बना सके। इस तरह के प्रचार आपसी विद्वेष एवं असुरक्षा की भावना में वृद्धि करते हैं तथा विभिन्न राजनैतिक एवं धार्मिक संगठनों द्वारा दिये जाने वाले भाषण, लेखक अैर प्रचार व्यक्ति को साम्प्रदायिक उन्माद से प्रभावित कर देते हैं, जिसके फलस्वरूप सामप्रदायिक दंगे होते हैं।

साम्प्रदायिक हिंसा के लिए कुछ प्रशासनिक कारक भी उत्तरदायी होते हैं। प्रशासन के महकमे का कार्य है विधि व्यवस्था बनाये रखना, गलत सूचनाओं या अफवाहों को रोकना और स्थिति के बिगड़ने पर उसे नियंत्रित करना। साम्प्रदायिक हिंसा में पुलिस की भूमिका दंगा करने वालों को गिरफ्तार करने, उन्हें खदेड़ने एवं जनता में शांति स्थापित करना है। परन्तु अधिकतर मामलों में यह दृष्टिगत होता है कि प्रशासनिक अधिकारी राजनीतिक निहित स्वार्थों से प्रेरित होकर कार्य करते हैं। पुलिस को कई प्रकार के प्रतिबंधों का सामना करना पड़ता है, जिसके कारण वे अपेक्षित भूमिका नहीं निभा सकते और यह सब सिर्फ कुछ राजनीतिज्ञों के निहित स्वार्थ की पूर्ति के साधन मात्र होते हैं और नुकसान साधारण जनता का होता है।

साम्प्रदायिक हिंसा से निपटने के उपाय

साम्प्रदायिकता की जड़ें सारे भारत में व्याप्त हैं तथा यह एक गंभीर चुनौती है। 'साम्प्रदायिकता' को यदि दूर न किया गया तो यह धीरे–धीरे भारत के विकास को बाधित करेगी और भारत कभी भी एक विश्व शक्ति नहीं बन पायेगा। अतः इससे निपटने के लिए कुछ प्रभावी कदम उठाने की आवश्यकता है।

साम्प्रदायिक दंगों से निपटने के लिए यह आवश्यक है कि साम्प्रदायिक मानसिकता रखने वाले राजनीतिज्ञों को चुनाव लड़ने से रोका जाये, धर्मान्ध लोगों को प्रतिरोधक दण्ड दिया जाये। इसके अतिरिक्त सरकारी तंत्र, जैसे– पुलिस विभाग को राजनीतिज्ञों के नियंत्रण से मुक्त करना, पुलिस के खुफिया विभाग को शक्तिशाली बनाना, पुलिस बल की पुनः संरचना करना, पुलिस प्रशासन को अधिक संवेदनशील बनाना, पुलिस प्रशिक्षण कार्यों में संशोधन करना, पुलिस अधिकारियों को तनाव प्रबंधन में प्रशिक्षण

देना आदि उपाय सम्मिलित है। इन प्रयासों से एक कुशल पुलिस संगठन, प्रबुद्ध पुलिस कर्मचारी का निर्माण हो जो निश्चित ही सकारात्मक परिणाम देंगे।

इसके अतिरिक्त सरकार को ऐसे उपाय भी करने होंगे, जिससे भेदभाव और वंचन की भावनाएँ खत्म हो जाएँ। सरकार को मुसलमानों की वास्तविक आवश्यकताओं, जैसे– रोजगार साक्षरता, हर क्षेत्र में उनकी न्यायसंगत प्रतिनिधित्व देना आदि का ध्यान रखना भी आवश्यक है। अल्पसंख्यक समुदायों के विकास और उनमें व्यापक निरक्षरता एवं बेरोजगारी को हटाने के लिए प्रयत्न करना आवष्यक है। धर्मनिरपेक्ष संरचनाओं को बढ़ावा देना चाहिए। उन धार्मिक समुदायों के खिलाफ कड़े कदम उठाये जाने चाहिए, जो साम्प्रदायिकता को बढ़ाते हैं। एक समान कानून संहिता की आज अत्यंत आवश्यकता है। विशेष समुदायों के लिए कोई विशेष कानून नहीं होने चाहिए और किसी भी राज्य को कोई विशेष दर्जा नहीं दिया जाना चाहिए।

इस प्रकार देश में साम्प्रदायिक तनावों को रोकने के लिए तथा साम्प्रदायिक सामंजस्य स्थापित करने के लिए बहुरूपीय उपायों की आवश्यकता है। भारत में निवास करने वाले विभिन्न धार्मिक समुदायों के लोगों में से अधिकांश ऐसे हैं, जिनमें इस प्रकार की भावना नहीं है, परन्तु राजनीतिज्ञ अपनी राजनीतिक स्वार्थों की रोटी सेंकने के लिए विभिन्न समुदायों के लोगों की धार्मिक भावनाओं को उत्तेजित करते हैं। अतः इसके रेाकने के लिए सर्वप्रथम यह आवश्यक है कि निहित स्वार्थों, व्यक्तिगत लाभ की राजनीति को बंद किया जाये। इसके लिए एक दृढ़ इच्छा शक्ति की जरूरत है तथा इसके बिना वह सम्भव नहीं है और साम्प्रदायिकता जैसे नासूर के साथ हम एक उज्जवल भारत के सपने को कभी भी साकार नहीं कर सकते हैं।

अतः बुनियादी स्तर पर साम्प्रदायिकता की समस्या को समाप्त करने के लिए सैद्धान्तिक कार्यवाहियों को व्यवहारिक रूप देना होगा। अन्यथा राष्ट्रीय एकता की दिशा में उपलब्धि केवल कागज पर ही देखने को मिलेगी। इसके लिए सामाजिक भेदभाव एवं वैमनस्यता को समाप्त करना होगा, क्योंकि इसके बिना राष्ट्रीय एकता एक दिवास्वप्न के अतिरिकत कुछ नहीं हो सकता।

नक्सलवाद की समस्या

नक्सलवाद की समस्या का उद्‌भव एवं विकास

नक्सलवाद आन्दोलन का नाम एक गाँव 'नक्सलवाड़ी' के नाम से जुड़ा हुआ है जो भारत, नेपाल और तब के पूर्वी पाकिस्तान की सीमा पर स्थित है। सन् 1967 में यहाँ के अदिवासी, कृषक एवं श्रमिक समुदाय ने भूस्वामियों के शोषण व अन्यायपूर्ण नीतियों के विरूद्ध हथियार उठाये। इसके बाद यह आन्दोलन जंगल की आग की तरह देश के अन्य भागों में फैल गया। देश के सर्वश्रेष्ठ और बुद्धिमान व्यक्ति घर छोड़कर इस आन्दोलन से जुड़ गये। इस आन्दोलन के समर्थक, माओवादी क्रान्तिकारी विचारधारा से अत्यधिक प्रभावित थे। इनका मानना था कि अन्याय व शोषण से छुटकारा पाने का एकमात्र तरीका सशस्त्र क्रान्ति है। नक्सलवादी सामाजिक–आर्थिक न्याय पर आधारित व्यवस्था का समर्थन करते है।

नक्सलवाद की समस्या का विस्तार

सर्वप्रथम सन् 1967–71 के वर्षों में बिहार और पश्चिमी बंगाल, आदि राज्यों में नक्सलवादी हमले हुए। इसका सबसे अधिक जोर पं. बंगाल में था और देश के विभिन्न क्षेत्रों में इसके प्रमुख नेता थे। प. बंगाल में चारू मजूमदार और कनु सान्याल, आन्ध्रप्रदेश में बी. सतयनारायण और टी. नागा रेड्डी, केरल में कुनीफल नारायणन और के.पी.आर. गोपालन आदि नक्सलवादियों ने भूमिहीन मजदूरों को संगठित कर गुरिल्ला युद्ध पद्धति के अधार पर भूमिपतियों के विरूद्ध खूनी संघर्ष की नीति अपनायी।

सन् 1990 में नक्सलवादी आन्दोलन ने आन्ध्र प्रदेश, बिहार एवं झारखण्ड के कुछ क्षेत्रों में पुनः जोर पकड़ा गया। इस बार इसकी जड़ें और गहरी हो गयीं। इस आन्दोलन के विभिन्न संगठनों के मध्य बेहतर तालमेल, सामंजस्य, संवाद व सम्प्रेषण हो ताकि देश के विभिन्न भागों से आन्दोलन को संचालित किया जा सके। इसका परिणाम तीन बड़े नक्सलवादी समूहों– माओवादी साम्यवादी केन्द्र (Moaist communist Center MCC), पीपुल्स वार ग्रुप (People's War Group) तथा भारतीय साम्यवादी दल (Communist Party of India (M.L.) के रूप में सामने आये। बाद में सन् 2004 में इन तीनां समूहों ने संयुक्त होकर एक समूह 'भारतीय साम्यवादी दल' (Communist Party of India (Maoist) का गठन किया गया।

आन्दोलन की वर्तमान स्थिति

नक्सलवादियों का दावा है कि वे देश के 182 जिलों में मौजूद है। एक आकलन यह भी है कि 20 राज्यों के करीब 220 जिलों में नक्सली किसी न किसी रूप में मौजूद हैं जो देश का लगीाग 40 फीसदी क्षेत्र है। भौगोलिक दृष्टि से देश के करब 92 हजार वर्ग किलोमीटर क्षेत्र वाले नक्सली प्रभाव को 'रेड कॉरिडोर; कहा जाता है। नक्सलवाद से प्रभावित क्षेत्र की सीमा नेपाल से शुरू होकर दक्षिण कर्नाटक तक जाती है। देश की खुफिया एजेन्सी 'रॉ' के अनुसार करीब 2000 सशस्त्र नक्सलवादी और 5000 रेगुलर कैडर अलग–अलग संगठनों में काम कर रहे हैं। इनसे सहानुभूति रखने वालों की संख्या लाखों में है।

जिन राज्यों में नक्सलवाद पूरे प्रभाव के साथ मौजूद है उनमें झारखण्ड, बिहार, आन्ध्र प्रदेश, छत्तीसगढ़, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र उड़ीसा और प. बंगाल प्रमुख हैं। मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी शासित प्रदेश प. बंगाल में 'जंगलमहल' और 'लालगढ़' ऐसे क्षेत्र हैं जो राज्य विरोधी नक्सल हिंसा से बुरी तरह प्रभावित हैं।

नक्सली हमले

नक्सली हिंसा आज सम्पूर्ण देश के लिए एक गम्भीर चुनौती बनी हुई है। अब तक हजारों लोग इस हिंसा के शिकार हो चुके हैं। सन् 2001 से 2005 तक नक्सली हिंसा में 2796 लोगों की जानें गई। जनवरी, 2006 से अगस्त 2009 तक कुल 2212 लोगों ने अपनी जान गंवाई है। बी.बी.सी. के मुताबिक अब तक 6000 से अधिक लोग अपनी जानें गवां चुके हैं। सन 2009 के करीब 6 माह में कुल 56 हमले किये गये।

सन् 2010 में नक्सलियों द्वारा कई बड़े हमले किये गये जिनमें 6 अप्रैल, 2010 में छत्तीसगढ़ के दांतेवाड़ा जिले की घटना महत्वपूर्ण है है जिनमें सी.आर.पी.एफ. के 75 जवान और छत्तीसगढ़ पुलिस के एक अधिकारी को मौत के घाट उतार दिया गया। 27 मई, 2010 को नक्सलियों द्वारा रेल पटरी उड़ाये जाने से मुम्बई से कलकत्ता जा रही ज्ञानेश्वर एक्सप्रेस के 13 डिब्बे पटरी से उतर गये जिसमें 15 से भी अधिक लोगों की जानें गई। सन् 2010 मं 6 माह के समय में नक्सली हमलों में करीब 400 से भी अधिक लोगों की जाने जा चुकी हैं।

नक्सलवाद के कारण

नक्सलवाद की समस्या का मूल कारण देश में गरीबी व आय के न्यूनतम स्तर को माना जाता है। इसे अतिरिक्त भूमि सुधारों की उपेक्षा, बढ़ती बेरोजगारी, आदिवासियों के साथ दुर्व्यवहार तथा दूर–दराज के क्षेत्रों में कमजोर राजनीतिक व्यवस्था भी इसके प्रमुख कारण है।

नक्सलवाद की समस्या का समाधान

नक्सलवाद की समस्या से निजात पाने के लिए बंदूक का डर एक अस्थायी हल तो है, किन्तु समस्या की जड़ तक पहुँचने के लिए लोगों तक पहुँचना और उनकी भावनाओं को समझना जरूरी है। ऐतिहासिक तथ्य इस बात का प्रमाण है कि माओवादियों के खिलाफ बड़े हमल बुरी तरह असफल रहे हैं। 20 राज्यों के 223 जिलों के 2000 से अधिक थाना क्षेत्रों में वामपंथी उग्रवाद के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन करने वाले बुद्धिजीवियों ने यह राय जाहिर की है। सरकार की नई द्विस्तरीय नक्सल विरोधी योजना भी इसी तर्ज पर काम कर रही है। नक्सलवाद का खात्मा और विकास को बढ़ावा केन्द्र की नयी नक्सल विरोधी नीति में एक तरफ तो करीब 40 हजार अर्द्धसैनिक बलों को शामिल किया गया है और दूसरी तरफ नक्सलवाद से निजात पाने वाले इलाकों में विकास की गतिविधियों के लिए 7,500 करोड़ रूपये के पैकेज का प्रावधान है। नई दिल्ली स्थिति रक्षा अध्ययन एवं अनुसंधान सेंगठन के माओवाद विशेषज्ञ के मुताबिक दूर–दराज के इलाकों में उग्रवादियों ने जनता का समर्थन हासिल करने के कारण सरकार द्वारा उनके खिलाफ चलाए जाने वाले ज्यादातर अभियान विफल हो जाते हैं। हालांकि आन्ध्र प्रदेश में सन् 1970 के दशक के शुरू में और उसके बाद सन् 2002–03 में दोबारा नक्सलवादियों के खिलाफ अभियान चलाए गए, लेकिन बाद में उग्रवादी फिर मजबूत हो गए।

नक्सलवाद की समस्या

सरकार जब तक जनता तक पहुँचने के अपने प्रयासों में गंभीरता नहीं लाएगी तब तक वह उनका समर्थन नहीं जीत पाएगी, जो उग्रवाद के खात्में के लिए बहुत जरूरी है। सुरक्षा मामलों की केन्द्रीय समिति द्वारा पारित एक प्रस्ताव के अनुसार सरकार की योजना है कि माओवादियों के लिए पनाहगाह बने जंगलों को साफ किया जाए और स्कूल, स्वास्थ्य केन्द्र, थाने और सड़कें बनाकर क्षेत्र का विकास किया जाए लेकिन नक्सल

प्रभावित इलाकों में विकास संबंधी काम करना आसान कार्य नहीं है, क्योंकि घने जंगलों से माओवादियों को उखाड़ फेंकना बहुत कठिन है।

कई राज्यों में नक्सलवाद चिंताजनक रफ्तार से बढ़ रहा है। कई स्तरों पर नक्सलियों के खिलाफ सेना के इस्तमाल की हिमायत की गई, पर प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने नक्सलवादियों के खिलाफ अभियान में सेना के इस्तेमाल से इन्कार कर दिया। विशेषज्ञों का मानना है कि यह एक अच्छा निर्णय है, क्योंकि सेना तो बाहरी हमले से बचाव के लिए है, आन्तरिक सुरक्षा के लिए नहीं। इसके अलावा यदि सेना अपने ही देश के लोगों को मारना शुरू कर देगी तो सामाजिक अस्थिरता को बढ़ावा मिलेगा।

इस प्रकार नक्सलवाद की समस्या के समाधान हेतु हमें नक्सलवाद के विरूद्ध खुलकर सामने आना ही होगा। पहले नक्सल प्रभावित पिछड़े लोगों को समाज में समाहित कर, उन्हें नक्सलवादियों से विमुख करना होगा आर साथ–साथ नक्सलवादियों को भी क्षमादान देकर, देश की मूल धारा में जोड़ना होगा।

भारतीय लोकतंत्र : राजनीति का अपराधीकरण व भ्रष्टाचार

ज्ञान और क्रिया की अभिन्नता हमारी शुद्ध भारतीय सोच का आधार रही है। सोचा हुआ सत्य और व्यवहार का सत्य हमारे लिए एक था। इसी का उद्घोष 'सत्यमेव जयते' के सूत्र में किया गया है। आजादी के बाद हमने सपने पाले थे कि गोरे लोगों का शासन समाप्त हुआ और हमारे जनप्रतिनिधि राष्ट्र को विकास की राह पर ले जायेंगे, लेकिन आजाद भारत का लाभ कुछ लोगों तक ही सीमित होकर रह गया और धनाढ्य व गरीब दो वर्ग बन गये। धनाढ्य लोग भोग–विलास का जीवन जीते हुए गरीब लोगों के खून–पसीने की गाढ़ी कमाई पर हाथ फेरते रहे। आजाद भारत का कानून भी इनकी मुट्ठी का हथियार बन गया। भ्रष्टाचार पूरे तन्त्र में इस तरह फैल गया कि राजनीति, नौकरशाही और न्यायपालिका का बड़े पैमाने पर अपराधीकरण होता गया और वर्तमान राजनीति तक आते–आते स्थिति इतनी बिगड़ी कि राजनीति सत्ता–संघर्ष का पर्याय बनकर रह गई। वर्तमान भारतीय राजनीति का विकृत व्यवहार आज हमें उस मुकाम पर ले आया है जहाँ नैतिक मूल्यों का ऐसा पतन हुआ कि भारतीय लोकतंत्र के पावन मूल्य कंपायमान हो उठे। नैतिकता की चारदीवारी के गिरते ही अपराध जगत् के लोगों की ऐसी रेलम–पेल मची कि वर्तमान में भारतीय लोकतंत्र के पावन केन्द्र (संसद और राज्यों की विधानसभाओं) में हिस्ट्रीशीटर सरेआम नजर आने लगे। वर्तमान में शायद ही कोई

राजनीतिक दल इस समस्या से अछूता है। लोकतन्त्र के समक्ष अपराध और भ्रष्टाचार ने जबरदस्त चुनौती देकर उसे कुछ लोगों के हाथ की कठपुतली बना दिया है।

गाँधीजी का मानना था कि लक्ष्य की पवित्रता का जितना महत्व है उतना ही महत्व साधनों की पवित्रता का भी है। इसलिए राजनीति उनके लिए जनसेवा का एक रंगमंच थी तथा राजनेता एक जनसेवक। लेकिन वर्तमान में राजनीति करने वालों ने इस सिद्धान्त को कोसों दूर छोड़ दिया और किसी भी साधन से अपने सत्ता लक्ष्य की प्राप्ति में जुट गये हैं। किसी भी कीमत पर सत्ता प्राप्ति का मतलब होता है समर्थन देने वालों से समझौता कर लेना। यही राजनीति व अपराध के साँठगाँठ की जड़ है। समर्थन इसे पनपने का मौका देता है तथा पैस इसे सींचता है। वर्तमान यू.पी.ए. सरकार ने संसद में किस प्रकार सांसदों की खरीद–फरोख्त की, इसका उदाहरण हम संसद में सांसदों के द्वारा नोटों की गड्डियाँ लहराते हुए देख चुके हैं।

सिद्धान्तहीन राजनीति में पैसा ही जीत का आधार बनता है। पानी की तरह पैसा बहाकर एक बार गरीब जनता को वोट डालने के लिए अपने खेमे में लाने के लिए काले धन का खजाना खोलना होता है, रातों–रात वोट खरीदे जाते हैं जिसके लिए सत्ता–लोलुप राजनेताओं को आर्थिक अपराधियों के दरवाजे खट–खटाने पड़ते हैं। इसी रास्ते से होकर हमारे राजनेता– दाऊद इब्राहिम, मेमन बन्धु जैसे सोने के तस्कर, मध्यप्रदेश के मोहम्मद शफी जैसे अफीम तस्कर, चन्द्रास्वामी जैसे पाखण्डी हथियार दलाल तथा एस.के. जैन जैसे हवाला हथकण्डेबाज लोगों की बदनाम बस्ती में चले जाते हैं। सत्ता प्राप्ति की भूख जब एक बार उस बस्ती ने शांत कर दी तो हमारे राजनेता कृतज्ञता के बोझ तले दबते ही चले जाते हैं और राजनीति के अपराधीकरण की यह विष–बेल फैलती चली जाती है।

आर्थिक सत्ता पर केन्द्रीकरण की लालसा के फलस्वरूप औद्योगिक घरानों द्वारा राजनीतिक दलों को मोटी चन्दे की रकम देना इसलिए स्वीकारते हैं ताकि सत्ता में आने पर अपने अनुकूल आर्थिक नीति बनाई जा सके। लाइसेंस कोटा प्राप्ति में सहूलियत हो सके। इस दिशा में धीरू भाइ अंबानी और नुस्ली वाडियाका उदाहरण हमारे सामने है। इन रिश्तों की परिणति कभी तो **'बाफोर्स काण्ड'** के नाम से राष्ट्र की सुरक्षा पर प्रश्नचिन्ह लगाती हुई अन्तर्राष्ट्रीय जगत् में चमक उठी तो कभी शेयर घोटाले के रूप में अर्थ जगत को संज्ञा शून्य बनाती है। कभी नैना साहनी तन्दूर काण्ड जेसी आपराधिक घटनाएँ घटती

हैं तो कभी मुम्बई बम विस्फोट जैसे काले अध्याय बनाये जाते हैं और कभी हवाला काण्ड के रूप में राजनेताओं को बेनकाब करती है।

भौगोलिक दृष्टि से देश का कोई भी प्रदेश राजनीति के अपराधी और भ्रष्टाचारी कारनामों से बचा हुआ नहीं है। सन 2012 के पाँच राज्यों के चुनावों में सभी राजनैतिक दल अपराधियों को टिकट देकर जिताने की भरपूर कोशिश की हैं। इन राज्यों में जातीय गठजोड़ सक्रिय है तो महाराष्ट्र और गुजरात में तस्करों व भू–माफिया गिरोह ने राजनीतिक प्रश्रय लिया हुआ है। राजस्थान व मध्यप्रदेश में अफीम व नशीले पदार्थों के तस्करों ने राजनीति का सहारा लिया है वहीं पश्चिम बंगाल में नक्सलवादियों से राजनेताओं के घनिष्ट सम्बन्ध हैं।

राजनीति को अपराध और भ्रष्टाचार से मुक्त कराने के लिए कई स्तरों से प्रयास किये गये। चुनाव आयोग के अथक प्रयासों के बावजूद भी राजनीतिक दल बाहूबलियों को ही टिकट देते रहे हैं। न्यायपालिका ने भी समय–समय पर दिशा–निर्देश दिये हैं। मीडिया ने भी जनता को उनके वोट के महत्व और प्रतिनिधि चुनने की समझ को स्पष्ट समझाया। लेकिन ये समस्या इतनी गम्भीर हो गई कि भारतीय लोकतन्त्र की नींव ही हिलने लगी।

बढ़ते अपराधीकरण : कुछ तथ्य

अपराध सम्बन्धी आँकड़ों का अगर हम चौदहवीं और पन्द्रहवीं लोकसभा के आम चुनावों के परिणामों से जाने तो स्पष्ट हो जायेगा कि ये तथ्य इस समस्या को कितना गम्भीर बनाते हैं–

सारणी–1

क्र. सं.	विवरण	2004	2009	कुल बढ़ोत्तरी	प्रतिशत
1.	सांसद जिनकी पृष्ठभूमि आपराधिक है	128	153	25	19.5
2.	कुल आपराधिक मामले	429	464	35	8.2
3.	सांसद जिनके विरूद्ध गम्भीर आपराधिक मामले दर्ज हैं	55	74	19	34.5
4.	गम्भीर आपराधिक मामले	302	268	34	11.3

स्रोत : नेशनल इलेक्शन वाच

सारणी–2

सांसदों के आपराधिक रिकॉर्ड राज्य वार

राज्य	योग	सांसदों पर आपराधिक आरोप	प्रतिशत	सांसदों पर आपराधिक आरोप	प्रतिशत
उत्तरप्रदेश	80	31	38.75	22	27.50
महाराष्ट्र	48	23	47.92	09	18.75
बिहार	40	17	42.50	06	15.00
आंध्रपदेश	42	11	26.19	03	7.14
गुजरात	26	11	42.31	07	26.98
कर्नाटक	28	09	32.14	05	17.86
झारखंड	14	08	57.14	02	14.29
तमिलनाडु	31	07	22.58	05	16.13
पश्चिम बंगाल	42	07	16.67	07	16.67
केरल	20	06	30.00	02	10.00
उड़ीसा	21	05	23.81	02	9.52
मध्यप्रदेश	29	04	13.79	02	6.90
छत्तीसगढ़	11	02	18.18	00	0.00
राजस्थान	25	02	8.00	00	0.00
हरियाणा	10	02	20.00	01	10.00
पंजाब	13	02	15.38	01	7.69
अण्डमान निकोबार	01	01	100.00	00	0.00
असम	14	01	7.14	00	0.00
उत्तराखण्ड	05	01	20.00	00	0.00
जम्मू–कश्मीर	06	01	16.67	00	0.00
दिल्ली	07	01	14.29	00	0.00
दादरानगर हवेली	01	01	100.00	00	0.00

राज्य	योग	सांसदों पर आपराधिक आरोप	प्रतिशत	सांसदों पर आपराधिक आरोप	प्रतिशत
		153		74	

स्रोत : नेशनल इलेक्शन वाच

सारणी–3

सन् 2003 में नेशनल इलेक्शन वाच द्वारा विश्लेषण व उम्मीदवारों की विस्तृत जानकारी राज्य विधानसभा चुनाव

क्र. सं.	राज्य	चुनाव में कुल उम्मीदवार	उम्मीदवार जिनकी जानकारी New/ADRK के पास उपलब्ध	उम्मीदवार संख्या जिनके विरूद्ध आपराधिक मामले लम्बित	आपराधिक छवि वाले उम्मीदवार का प्रतिशत	कुल विधानसभा सीटें	कुल विजेता जो आपराधिक छवि वाले	आपराधिक छवि वाले सांसदों व विधायक का प्रतिशत
1.	मध्यप्रदेश विधानसभा 2003	2171	753	उपलब्ध नहीं	उपलब्ध नहीं	230	36	16%
2.	महाराष्ट्र, अक्टूबर 2004	2678	1624	366	22.5	288	86	30
3.	कर्नाटक,दिसम्बर 2004	1715	1715	211	12.3	224	56	25
4.	उड़ीसा, मई 2004	802	802	135	16.83	147	41	28
5.	बिहार, फरवरी 2005	1279	1199	418	34.86	243	102	42
6.	हरियाणा, फरवरी 2005	983	529	60	11.34	90	23	26
7.	झारखण्ड, फरवरी 2005	1390	518	151	29.15	81	25	31
8.	बिहार, नव. 2005	2135	1613	451	28.1	243	119	49
9.	पं. बंगाल, मई 2006	1654	1129	217	19.22	294	45	15
10.	असम, मई 2006	997	698	35	5.41	126	07	6

क्र. सं.	राज्य	चुनाव में कुल उम्मीदवार	उम्मीदवार जिनकी जानकारी New/ADRK के पास उपलब्ध	उम्मीदवार संख्या जिनके विरूद्ध आपराधिक मामले लम्बित	आपराधिक छवि वाले उम्मीदवार का प्रतिशत	कुल विधानसभा सीटें	कुल विजेता जो आपराधिक छवि वाले	आपराधिक छवि वाले सांसदों व विधायक का प्रतिशत
11.	तमिलनाडु, मई 2006	2586	1366	201	14.71	234	77	33
12.	पांडीचेरी, मई 2006	218	145	12	8.28	30	04	13
13.	मणिपुर, 2007	308	308	04	1.3	60	01	2
14.	पंजाब, 2007	1043	612	74	12.09	117	20	17
15.	उत्तराखण्ड, 2007	806	806	59	7.32	70	13	19
16.	उत्तरप्रदेश, 2007	6086	5940	881	14.83	403	160	40
17.	हिमाचल प्रदेश, 2007	336	336	50	14.88	68	21	31
18.	मेघालय, 2008	एक भी उम्मीदवार आपराधिक छवि वाला नहीं है।						
19.	नागालैण्ड, 2008	218	218	02	0.92	60	00	0
20.	त्रिपुरा, 2008	313	313	06	1.92	60	01	21
21.	गुजरात, 2008	1268	1268	233	18.38	182	45	25
22.	कर्नाटक, 2008	2242	2242	142	6.33	234	42	18
23.	मध्यप्रदेश, 2008	3179	1168	208	17.81	230	54	23
24.	छत्तीसगढ़, 2008	1066	904	76	8.41	90	11	12
25.	राजस्थान, 2008	2194	2194	225	10.26	200	30	15
26.	दिल्ली, 2008	875	645	92	14.26	70	27	39
27.	मिजोरम, 2008	206	206	03	1.46	40	02	5

इन दोनो सारणियों से पता चलता है कि आपराधिक रिकार्ड वाल नेता पूरे भारत में व्याप्त हैं और वे जनता के चुने गये नुमायन्दे हैं जो संसद में जाकर नोटों में बिकते हैं और भ्रष्आचार को फैलाने में पूरा योगदान देते हैं। भारत के बुद्धिजीवियों पर यह जिम्मेदारी है कि इस समस्याग्रस्त समय में अपराध और भ्रष्टाचार से कैसे निजात दिलाई जा सके ? यह तथ्य राजनीति के अपराधीकरण की समस्या की गम्भीरता की व्यापकता को दर्शाता है।

'नेशनल इलेक्शन वाच' द्वारा राज्य वार किये गये विश्लेषण से स्पष्ट है कि मेघालय को छोड़कर पूरे देश में ही आपराधिक छवि वाले उम्मीदवार हैं। वर्तमान में जब देश के लोकतन्त्र केन्द्रों की यह स्थिति है तो आने वाले समय में कैसे होगी इसका अन्दाजा लगाया जा सकता है। नेशनल इलेक्शन वाच के अनुसार 15वीं लोकसभा में 153 सांसद ऐसे निर्वाचित हुए जिनके विरूद्ध आपराधिक व भ्रष्टाचार के मामले दर्ज हैं। जिनमें सभी राजनैतिक दलों के लोग शामिल है।

कारण

1. सत्ता के प्रति मोह

यह सर्वविदित है कि राजनैतिक लोग उम्र के किसी भी पड़ाव पर पहुँच गये हों लेकिन सत्ता का मोह उनको इससे अलग नहीं कर पाता। वे जन्म राजनीति में लेना चाहते हैं और मरना भी, क्योंकि राजनीति में रहकर वे कुछ भी कर गुजरने की शक्ति रखते हैं। सभी दल साम–दाम–दण्ड और भेद की नीतियों के माध्यम से अपने प्रत्याशी को जिताने की कोशिश करते हैं। सत्ता के प्रति मोह शीर्ष नेताओं को इस हद तक मजबूर कर देता है कि इन अपराधियों के अपराध को न सिर्फ छुपाते हैं बल्कि इनसे अपराध और भ्रष्टाचार भी कराते हैं।

2. चुनाव के लिए चन्दा

चुनाव में धन की आवश्यकता होती है। राजनीति दल यहीं से भ्रष्टाचार को न्यौता देते हैं। जो चुनावों में धन देगा तो निश्चित है या तो वह चोर होगा या भ्रष्ट अथवा अपराधी। यही स्थिति एक साफ छवि वाले राजनेता के लिए काँटा बन जाती है तो वे इन आपराधिक लोगों के सामने टिक नहीं पाता। बड़े–बड़े औद्योगिक घराने दलों को भारी भरकम धन मुहैया कराते हैं, बाद में ये घराने माफिक नीतियाँ बनाकर जनता का शोषण करते हैं।

3. परमिट लाइसेन्स, कोटा राज व कालाधन का अटूट सम्बन्ध।

इसे उन लोगों के लिए आसान बना दिया जो सत्ता में है। औद्योगिक घराने, नौकरशाहों व राजनेताओं का 'तिगड्डा' एक दूसरे के लिए दलाली करन लगते हैं। राजनीति बिना श्रम किये धन एकत्रित करने का जरिया बन गई। 'खाओ और खाने दो' का एक व्यावहारिक नियम बना दिया गया। परमिट, लाइसेन्स और कोटा राज अपने

लोगों के लिए सुरक्षित कर के लिए इनकी व्यवस्था में ही अपराध व भ्रष्टाचार दिन दूना रात चौगुना के रूप में बढ़ने लगा।

के. संघानम, के.एन. वांचू इसके बाद अनेक कमेटियों की रिपोर्ट ने यह साबित कर दिया है कि काला धन अपराध के इस गठजोड़ ो फलने–फूलने का मौका देता रहा है। काले धन से समानान्तर अव्यवस्था बिना हिसाब–किताब के चलत रहती है। इसी काले धन से धीरू भाई अंबानी छोटे से अन्तराल में एक बहुत बड़े अर्थव्यवस्था का साम्राज्य बने बैठा। प्रणव मुखर्जी ने अपने वित्त मंत्री कार्यकाल में एन्टीडम्पिंग ड्यूटी के कारण 1000 करोड़ रूपये का फायदा पहुँचाया। अनेक भारतीयों का काला धन स्विस बैंकों में भी जमा है। सरकार अभी तक उन काले धन वालों का नाम उजागर करने में नाकाम रही है। यही राजनीति और भ्रष्टाचारियों के मध्य गठजोड़ है। काला धन हत्या, अपहरण, लूट, डकती, धोखाधड़ी जैसे संगीन अपराधों के सहारे के बिना संभव नहीं हो सकता है। अतः भ्रष्टाचार और अपराध का एक अटूट सम्बन्ध है जो राजनीति की छत्रछाया में पनपता है और बढ़ता है और यह धीरे–धीरे लोकतन्त्र की जड़ को खोखला करता है।

4. जनता की निष्क्रियता

जनता की ऐसी क्या मजबूरी है कि वे अपराधी छवि वाले लोगों को संसद और विधानसभा में चुनकर भेजते हैं लेकिन यह भी सत्य है कि कोई भी राजनीतिक दल उम्मीदवारों के चयन पर जनता से राय–मसविरा नहीं लेते। उनका तो मात्र लक्ष्य कौन विजेता बन सकता है ? इस पर रहता है। जनता भी उम्मीदवार की पृष्ठभूमि को बिना देखे जाति, धर्म के आधार पर वोट देती है। भारत की अधिकांश जनता वोटों से दूर ही रहती है जिसमें अपराध छवि वालों की बन जाती है और जो वोट पड़ते हैं उनसे जीत हासिल कर लेते हैं। सन् 2009 के लोकसभा चुनाव इसी ओर संकेत करते हैं।

5. पुलिस तथा अन्वेषण संस्थानों की संलिप्तता

भारत मे आये दिन पुलिस की वर्दी पर दाग लगाये गये तो दूसरी ओर **सी.बी. आई.** तथा अन्य जाँच अभिकरण भी भ्रष्टाचार के कठघरे में खड़े पाये जाते रहे हैं। समाचार पत्र के छपे एक आँकड़े के अनुसार भ्रष्टाचार और दूसरे अपराधों के लिए 2004 में दिल्ली पुलिस के 7.755 लोगों के खिलाफ कार्यवाही की गई। इनमें एक ए.सी.पी., 63 इन्स्पेक्टर, 1385 सब इन्स्पेक्टर, 724 एसिस्टेंट सब इन्स्पेक्टर, 1569 हैड कांस्टेबल, 3570

कांस्टेबल और 54 चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी शामिल थे। ये आँकड़े सिर्फ दिल्ली पुलिस में फैले अपराध और भ्रष्टाचार के हैं। पूरे भारत में कितनी भयावह स्थिति होगी। इसका आंकलन लगाना भी कठिन है। मर्ज कितना फैला चुका है कि भारतीय लोकतन्त्र के रक्षक ही भक्षक बन गये हैं। 2008 के आँकड़े बताये हैं कि **सी.बी.आई.** जाँच के बाद भी 2276 केस लम्बे समय से लम्बित पड़े हैं। गुजरात के पुलिस एनकाउन्टर में राजस्थान और गुजरात के अनेक आई.पी.एस. अधिकारी वर्तमान मं जेल की हवा खा रहे हैं।

6. साम्प्रदायिक वोट बैंक की राजनीति

महात्मा गाँधी ने कहा था कि धर्म की कोई राजनीति नहीं होती, परन्तु राजनीति का धर्म अवश्य होता है। लेकिन साम्प्रदायिक वोट बैंक की राजनीति ने इसे अपने ही तरीके से परिभाषित किया। क्षेत्रवाद, धर्म, जाति, लिंग एवं सम्प्रदाय जैसी विभिन्नताओं को वोट बैंक मान लिया और आये दिन राजनेता इसे भुनाते रहे और भड़काऊ बयान देकर इन्हें आपस में विभाजित करते रहे हैं। इन्हें अपनी ओर आकर्षित करने के लिए अपराध और भ्रष्टाचार दोनों का सहारा लेते रहे हैं। महाराष्ट्र में मनसे ने मराठी पुत्र का नियम लगाकर अपना उल्लू सीधा करने का प्रयास किया। आन्ध्रप्रदेश, पंजाब, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश आदि में इसी आधार पर वोट बैंक की राजनीति की गई। यह राजनीति देश के लिए भयंकर समस्या खड़ी कर सकती है।

7. आयकर विभाग की निष्क्रियता

आयकर विभाग इसलिए स्थापित किया गया है कि वह भारतीय नागरिकों से कर का सही आंकलन कर उसे खजाने में जमा कराये, लेकिन आयकर विभाग के अधिकारी जब अपराधी और भ्रष्टाचारियों को न पकड़ कर सामान्य नागरिकों को पकड़ने से पता चलता है कि विभाग कितना कमजोर हो चुका है। आयकर कानून की धारा 13ए व 139 (4–बी) के प्रावधान के बावजूद राजनैतिकदल अपने खातों का अंकेक्षण नहीं करवाते और विभाग निष्क्रिय रह जाता है। भ्रष्टाचारी आयकर की नजर से स्पष्ट बच जाते हैं तो भ्रष्टाचारियों का हौंसला और बुलन्द हो जाता है, क्योंकि उनके सम्बन्ध सत्ता में बैठे राजनेताओं से होते हैं। ऐसी स्थिति में भारत का विकास कैसे सम्भव हो सकता है।

8. चुनाव प्रक्रिया की कमजोरी

भारत की संसद और राज्यों की विधानसभाओं में जनता के प्रतिनिधि के चुनावों की प्रक्रिया में भी अनेक कमियाँ हैं। भारत में कोई भी व्यक्ति, किसी भी पद के लिए

चुनाव लड़ सकता है, चाहे वह अनपढ हो, चाहे संगीन अपराधी हो, चाहे जेल की सलाखों में हो। जब अपराधी सलाखों में रहकर चुनाव जीत जाता है तो वह अपने प्रभाव का इस्तेमाल करके सबूतों से खिलवाड़ करता है और दण्ड से साफ निकल जाता है। सन् 2009 के आम चुनावों में अपराधियों का ग्राफ किस तरह बढ़ा है इसके लिए सारणी में स्पष्ट दिया गया है।

चुनाव आयेाग संवैधानिक संस्था होने के बावजूद भी उसका झुकाव किसी दल विशेष की तरफ देखा जाता है तो आश्चर्य होता है कि एक स्वतंत्र संवैधानिक संस्थाकिस प्रकार कमजोर हो रही है। अब तक जितने भी चुनाव आयुक्त आये हैं उनमें टी.एन. शेषन जेसे निष्पक्ष चुनाव आयुक्त अलग ही है। वर्तमान चुनाव आयुक्त कुर्रेशी ने उत्तर प्रदेश में दल विशेष के दबाव में आकर एकदल के चुनाव चिन्ह को ढकवाया है, यह स्थिति अपराधियों को बढ़ावा देती है।

परिणाम

राजनीति में बढ़ते अपराधीकरण से संसद और विधानसभाओं में ऐसे लोग पहुँचते हैं जिससे ऐसे परिणाम सामने आते हैं कि देश की तो परिणाम भुगतने पड़ते ही हैं, साथ ही भोली–भाली जनता का मेहनत का पैसा विकास में न लगकर इनकी भेंट चढ़ जाता है और जनता फिर पाँच वर्ष का समय ताकती रह जाती है। राजनीति के अपराधीकरण और भ्रष्टाचार के कारण ऐसे परिणाम सामने आते हैं। जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं :–

1. देश के विकास में बाधा पहुँचती है।
2. अपराधी संसद और विधानसभाओं में असंसदीय व्यवहार करते हैं।
3. साम्प्रदायिक सद्भाव बिगड़ता है।
4. लोकतान्त्रिक मूल्यों का क्षरण होता है।
5. जनता का अपने तन्त्र और प्रतिनिधि के प्रति अविश्वास जगता है।
6. योग्य राजनेता के स्थान पर अयोग्य राजनेताओं को बढ़ावा मिलता है।

समाधान

भारतीय लोकतन्त्र के समक्ष राजनीति का अपराधीकरण और भ्रष्टाचार की विषबेल का समूलोच्छेद केसे किया जाये ? अपराध के इस गोरखधन्धे को राजनीतिक संरक्षण में अपनी जड़ें फैलाने से कैसे रोका जाये ? पापाचार के इस कैंसर से भारतीय प्रजातन्त्र को निष्प्राण बना देने से कैसे रोका जाये ? इसके लिए बुद्धिजीवी ही उद्वेलित नहीं अपितु

जनमानस भी है। **पाँच सदस्यीय बोहरा समिति** ने अपनी रिपोर्ट में इस समस्या के समाधान हेतु खुलासा भी किया है, तथापि मरी नजर से इस समस्या के कुछ उपाय हो सकते हैं :–

1. सशक्त लोकपाल की स्थापना

राजनीति का अपराधीकरण और भ्रष्टाचार को रोकने के लिए अन्ना हजारे द्वारा सुझाया हुआ लोकपाल बनना चाहिए जो प्रधानमंत्री से लेकर सामान्य कर्मचारी को इसके दायरे में ला सके। इसे इतने अधिकार होने चाहिए कि वे अपराधी और भ्रष्टाचारी को तुरन्त दण्ड दे सकें।

2. चुनावों में क्रान्तिकारी परिवर्तन

रोग बहुत बढ़ चुका है, छोटे–मोटे प्रयास फलदायी नहीं होंगे। ऐसी स्थिति में टी. एन. शेषन जैसा मुख्य चुनाव आयुक्त होगा तब कहीं जाकर अपराधियों और भ्रष्ट लोगों पर लगाम लगेगी। चुनाव आयोग की स्वतन्त्रता को और अधिक प्रभावी बनाना होगा। परिचय–पत्र की अनिवार्यता, इलेक्ट्रानिक मशीन से चुनाव प्रक्रिया, ईमानदार पुलिस अधिकारियों की नियुक्ति आदि एसे अनेक कारण हैं जिससे चुनावों में क्रान्तिकारी परिवर्तन सामने आयेंगे। सजा प्राप्त व्यक्ति चुनाव न लड़े तो निश्चित है अपराध का ग्राफ नीचे आयेगा।

3. जनप्रतिनिधित्व कानून की धारा 8(1) की समीक्षा

अभी तक केवल सिद्ध दोष से अपराधी को चुनाव लड़ने से रोका जा सकता है, किन्तु पुलिस, राजनेता तथा अपराधियों का गठजोड़ इसे सिद्ध होने नहीं देता था। अतः जनप्रतिनिधित्व कानून की धारा 8(1) की पुनः समीक्षा की जानी चाहिए और इसे अधिक व्यापक बनाना परम आवश्यक हो गया है।

4. राज्य सुरक्षा आयोग का गठन

राजनीतिक अपराधियों की साँठ–गाँठ पुलिस तक व्याप्त होती है। पुलिस राजनीतिक अपराधियों के तहत ही काम करती है, अतः उनसे न्याय की कामना करना व्यर्थ है। जो रक्षक है वही भक्षक बन जाता है। तभी हवाला, साहनी हत्याकाण्ड जैसे कुकृत्य हो जाते हैं और पुलिस इनके दबाव के चलते कुछ नहीं कर पाती है। अतः पुलिस में सुधार की सम्भावना को देखते हुए राज्य सुरक्षा आयोग का गठन होना परम

लाजमी है जिसमें सभी दलों के सदस्यों के साथ–साथ आर्मी के निष्पक्ष अधिकारी भी इसमें शामिल हो।

5. आयकर कानून की धारा 13ए तथा 139(4–बी) का कड़ाई से पालना हो

आयकर कानून की यह धारा इसलिए बनाई गई कि यह अवैध लेन–देन को रोक सके। जिससे राजनीतिक दलों के कोषों की पारदर्शिता बढ़े। चन्दों के स्रोतों का ब्योरा दिया जाए। लेकिन ऐसा लगता है कि आयकर की यह धारा दिखावटी ही रह गई है। आयकर विभाग में बैठे अधिकारी बिना किसी दबाव के इसकी प्रभावी क्रियान्वित नहीं करेंगे तब तक राजनीतिक दलों का अपराधियों और औद्योगिक घरानों से अवैध व्यापार चलता रहेगा। सन् 2012 के उत्तर प्रदेश के चुनावों से पूर्व अनेक स्थानों से नोटों की गड्डियाँ पकड़ी गई हैं। यह एक अच्छा प्रयास है।

6. भोगवादी संस्कृति पर नियन्त्रण

भोगवादी संस्कृति भ्रष्टाचार और अपराधियों को बढावा देती है। जब अपराधी भ्रष्ट साधनों से धन जुटाता है तो उसे इस खर्च के मायने उसे कोसों दूर दिखाई देते हैं। अतः यह अनर्थ की जड़ है। सरकार को चाहिए कि वह भोगवादी संस्कृति के अड्डों को समाप्त करे और खर्च करने की एक सीमा रखे। तब जाकर भारत का लोकतन्त्र इन लोगों की जकड़ से निकलकर आम लोगों का का बन पायेगा।

7. गाँधीजी के ट्रस्टीशिप सिद्धान्त को व्यावहारिक बनाना

गाँधीजी का मानना था कि प्रत्येक व्यक्ति का सम्पत्ति पर अधिकार ऐसा हो मानो वह जनता की धरोहर का न्यासधारी हो। इससे एक ओर तो अकूत सम्पत्ति के एकत्रण पर रोक लगेगी और राजनेता, अपराधी, नौकरशाह और औद्योगिक घराने अवैध व्यापार नहीं करेंगे। तब भारत का लोकतन्त्र कमल की तरह खिलता हुआ नजर आयेगा।

8. काले धन पर तुरन्त प्रभावी रोक

राजनीति में अपराध के रिश्तों की शुरूआत कालेधन से होती है। बिना इस पर रोक लगाये राजनीति रूपी गंगा का सफाई अभियान पूरा नहीं हो सकता है। काला धन नेताओं, नौकरशाहों को पोषण देता है और इससे अपराध बढ़ता है।

9. न्यायपालिका और मीडिया की सशक्त भूमिका

न्यायपालिका ने हवाला काण्ड, स्टाम्प घोटाला, चारा घोटाला, केस–फोर वोट काण्ड, एमपी लेड घोटाला आदि मामलों में ऐसे निर्णय दिये हैं कि अपराधी और भ्रष्टाचारियों को जेल की हवा खानी पड़ी है। 12 जुलाई, 2001 को सर्वोच्च न्यायालय ने केन्द्र सरकार को निर्देश दिया था कि वह राजनीतिक दल से मसविरा कर राजनीति के अपराधीकरण रोकने के उपाय ढूँढे। तथापि न्यायिक सक्रियता की आवश्यकता है।

मीडिया लोकतन्त्र का चौथा स्तम्भ कहलाता है अगर मीडिया समाज और देश में सकारात्मक भूमिका अदा करें तो अपराधियों और भ्रष्टाचारियों का पर्दाफाश होगा और एक अच्छे जनमानस का निर्माण होगा।

10. जनता की सक्रिय सहभागिता

किसी भी सशक्त लोकतन्त्र का निर्माण जनता की सक्रिय सहभागिता, नैतिक शिक्षा व आत्मक विकास की ईंटों से होता है। अगर जनता चुनावों से सुशिक्षित व सुसंस्कृत लोगों को चुनकर भेजे और समय–समय पर उनसे समाज और देश के विकास की चर्चा करे।

अगर मैं कहूँ कि **'हर डाल पे उल्लू बैठा है, अंजामे गुलिस्तां क्या होगा'**। यदि हमें भारतीय लोकतन्त्र को बचाना है तो भारतीय राजनीति रूपी गंगा को अपराधों के **'शैवालों'** से बचाना होगा। तस्करों, हवाला, दलाली तथा काले धन के गंदे नालों को इसमें गिरने से रोकना होगा। राजनीति में शुचिता लानी होगी। अपराधी को दण्ड मिलना चाहिए। दलों की करनी और कथनी एक होनी चाहिए। राजस्थान का भंवरी देवी जैसा काण्ड दुबारा न हो। इसके लिए राजनेताओं का अपराधियों को संरक्षण देना छोड़ना होगा। निर्णय की प्रक्रिया में जनता की भागीदारी होनी चाहिए। यह तभी सम्भव है जब राजनीति में अपराध और भ्रष्टाचार की भूमिका समाप्त हो। लोकतन्त्र की गुणवत्ता के लिए कार्यपालिका, न्यायपालिका, व्यवस्थापिका, मीडिया और जनता के बीच सामंजस्य को बढ़ाना होगा।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1 http://wikipedia.org/democracy2001 accessed on march 2014

2 **शास्त्री इन्द्रचन्द्र (2013): लोकतंत्र का लक्ष्य**

3 Held david: cosmopolitan democracy

4 मनु (VII 130), गौतम (X 25), विष्णुधर्मोत्तरपुराण (III 24), अभिज्ञानशाकुन्तल (5e25)

5. मनु (VII 130–135), शुक्रनीति (IV 2, 128-129) U.N. Ghoshal, Hindu Revenue System, Saraswat Press, Calcutta 1972, p. 135, P.V. Kane, History of Dharuashastra Vol. III, Bhandarkar Oriental Research Institute, Poona – 1973.

6 दुष्टस्य दण्डः, जनस्य पूजा, न्यायेन कोषस्य च संप्रवृद्विः। अपक्षपातोर्थिषु राष्ट्ररक्षा पञ्चैव यज्ञाः कथिताः नृपाणां।। अग्निसंहिता, 4/99, मनु IX 194-195, मनु IV 180, शुक्रनीति IV 5-14-15.

7 ओ.पी. गाबा, राजनीतिक विचारों का इतिहास, पृ. 191.

8. बारकर, वेस्टर्न पोलिटिकल थॉट्स, पृ. 211.

9 सुभाष कश्यप, हमारा संविधान, पृ. 25.

10 वामनशिवराम आप्टे, संस्कृत, हिन्दी कोश.

11. विद्या निवास मिश्र, लोक और का स्वर वर्ष 2000, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 99.

12 Person, Lester B: Democracy in world Politics, P.P. 343.

13 अथर्ववेद, 12/135.

14 ऋग्वेद दशम मण्डल, 191 सूत्त 4 मन्त्र (सम्पादक पं. दामोदर सातवलेकर)

15. मनुस्मृति, IX 170

16 कौटिल्य, अर्थशास्त्र, 5–22

17 मेनका गाँधी बनाम भारत सरकार, AIR 1978 (1) Sec

18 काव्य प्रपानिका, डॉ. कपिल देव पाण्डेय (2000), पृ. 57

19 ऋग्वेद, 10/173/1 (सम्पादक पं. दामोदर सातवलेकर)

20 यजुर्वेद, 10/30 (सम्पादक पं. दामोदर सातवलेकर)

21 यजुर्वेद, 20/2 (सम्पादक पं. दामोदर सातवलेकर)

22 यजुर्वेद, 33/83 (सम्पादक पं. दामोदर सातवलेकर)

23 यजुर्वेद, 27/3 (सम्पादक पं. दामोदर सातवलेकर)

24. अथर्ववेद, 19/37/03 (व्याख्या – स्वामी दयानन्द)

25. अथर्ववेद, 15/09/01 (व्याख्या – स्वामी दयानन्द)

26 अथर्ववेद, 17/09/88 (व्याख्या – स्वामी दयानन्द)

27 अथर्ववेद, 18/12/63 (व्याख्या – स्वामी दयानन्द)